॥ रामकथा ॥

मोरारि बापू

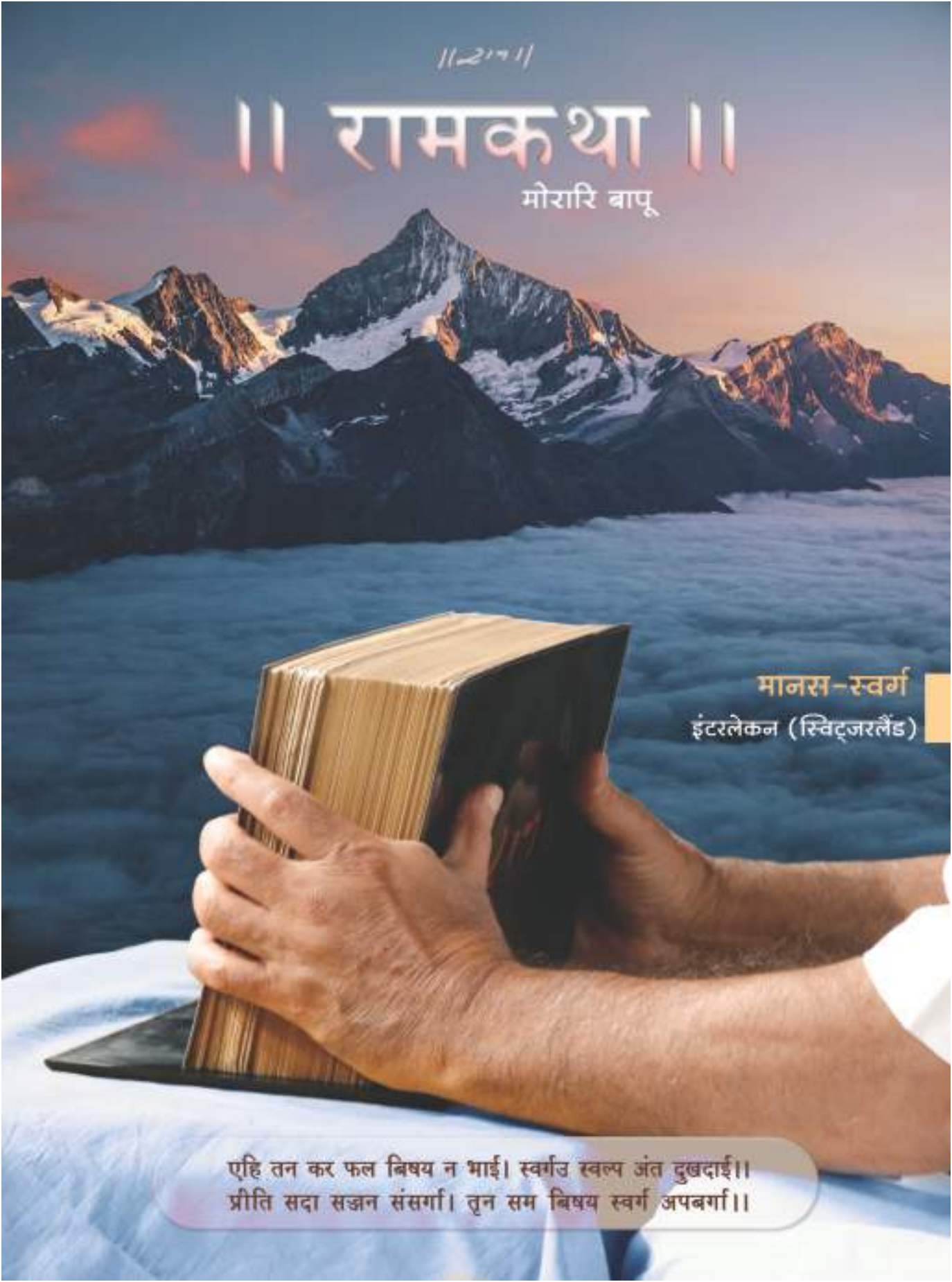

मानस-स्वर्ग

इंटरलेकन (स्विट्जरलैंड)

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥

|| रामकथा ||
मानस-स्वर्ग
मोरारिबापू
इंटरलेकन (स्विट्ज़रलैंड)
दिनांक : १५-७-२०१७ से २३-७-२०१७
कथा-क्रमांक : ८१५
प्रकाशन :
मार्च, २०२०

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू की रामकथा प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से जिसको पृथ्वी का स्वर्ग माना जाता है ऐसी स्वर्गभूमि स्विट्ज़रलैंड में दिनांक १५-७-२०१७ से २३-७-२०१७ के दिनों में सम्पन्न हुई। इस रमणीय भू-भाग में आयोजित इस कथा 'मानस-स्वर्ग' विषय पर केन्द्रित गुई।

'स्वर्ग भूमि नहीं है, भूमिका है।' ऐसे सूत्रात्मक निवेदन के साथ बापू ने तात्त्विक परिप्रेक्ष्य में कहा कि स्वर्ग कोई भूमि नहीं है; ये कोई टुकड़ा नहीं है; ये कोई भू-भाग नहीं है कि वहां हम प्लोट खरीदें, मकान बनायें। स्वर्ग कोई हाउसिंग सोसायटी नहीं; भूमि नहीं, भूमिका है स्वर्ग। आध्यात्मिक दृष्टि से और बुद्धपुरुषों की अनुभव की दृष्टि से स्वर्ग है अवस्था का नाम। स्वर्ग है स्थिति का नाम।

'स्वर्ग' शब्द के 'स्व' और 'ग' वर्ण के बारे में एक श्रोता के प्रश्न के उत्तर में बापू ने कहा कि स्व की ओर गति करना ही स्वर्ग है। पर की ओर गति नहीं, स्व की ओर गति। बहिर्गमन नहीं, आंतर-गमन। भगवद्कथा का, कोई भी शास्त्र का श्रवण, मनन, निधिध्यासन, स्वाध्याय, प्रवचन करते-करते यदि स्व की ओर हमारा गमन शुरू हो जाय तो ये स्वर्ग का पंथ हो जाएगा।

अनंत श्री विभूषित महामंडलेश्वर विष्णुदेवानंदगिरिजी विरचित 'वेदान्तरत्नाकरसार' के श्लोक का बापू ने अपने ढंग से भाष्य किया और स्वर्ग का इन शब्दों में परिचय दिया कि निर्भयता स्वर्ग है; स्वतंत्रता स्वर्ग है; मन की शांति स्वर्ग है। भवन में कंकास न हो वो स्वर्ग है; परिवार में कंकास न हो वो स्वर्ग है और तन में रोग न हो वो स्वर्ग है। मन में शांति हो, तन में रोग न हो, जीवन में कलह न हो वो स्वर्ग है। स्वर्ग का एक नाम है त्रिलोक्य। लेकिन मैं कहूंगा कि सत्य, प्रेम, करुणा स्वर्ग है।

'रामचरितमानस' के सातों सोपान में भिन्न-भिन्न स्वर्ग है इसका ज़िक्र करते हुए बापू का कहना हुआ कि 'बालकांड' का स्वर्ग है निर्वैर मनःस्थिति। किसी के प्रति हमारे दिल में कभी भी वैर प्रगट न हो ये है 'बालकांड' का स्वर्ग। 'अयोध्याकांड' का स्वर्ग है तपस्या। 'किष्किन्धाकांड' का स्वर्ग है पतंजलि का सूत्र लेकर कहूं तो मैत्री। वियोग में जीना ये 'सुन्दरकांड' का स्वर्ग है। 'लंकाकांड' का स्वर्ग है क्रमशः धीरे-धीरे अनावश्यक वस्तुओं का त्याग। और 'उत्तरकांड' का समग्र स्वर्ग है स्वयं की पहचान।

बापू ने 'भगवद्गोमंडल' और 'अमरकोश' जैसे गुजराती-संस्कृत कोश अंतर्गत दिये गये स्वर्ग के विविध अर्थों का परिचय दिया। साथ ही 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'छांदोग्य उपनिषद', 'कठोपनिषद', तेजोबिन्दु उपनिषद' जैसे शास्त्रों में दी गई स्वर्ग की विभिन्न अर्थछाया का उद्घाटन भी किया।

-नीतिन वडगामा

मानस
स्वर्ग
१

मुस्कुराहट भी एक सत्संग है

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।

बाप! परमात्मा की कृपा से नहीं बल्कि परमात्मा की इच्छा से, पृथ्वी का जिसको स्वर्ग कहते हैं ऐसी तथाकथित स्वर्गभूमि पर भगवद्कथा का, रामकथा का आरंभ हो रहा है उसकी मुझे स्वयं को, आप सभी को भी और व्यासपीठ को सुननेवाले हजारों-हजारों मेरे श्रावक भाई-बहनों को विशेष प्रसन्नता है। शिव और शिव के श्रोता पार्वती और पूरा अस्तित्व; परम बुद्धपुरुष बाबा कागभुशुंडि, उनके प्रधान श्रोता गरुड और विधविध विहंग; तीर्थराज प्रयाग में कथा गायन करते हुए परम प्रपन्न शरणागत ब्रह्म महर्षि याज्ञवल्क्य और उसके श्रोता भरद्वाज और पूरी कायनात और कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी और उसका श्रोता मन और संतसमाज; इन सभी वक्ताओं को, उनके श्रोताओं को, साथ-साथ मेरे श्रोताओं को भी मैं व्यासपीठ से प्रणाम करता हूं। बहुत साल पहले इस देश में कथा हो उसकी भूमिका बनी थी। यजमान परिवार का मनोरथ भी था। योग, लगन, ग्रह, वार, तिथि नहीं अनुकूल रही; ये कथा नहीं हो पाई। यद्यपि कोई डेईट घोषित नहीं हुई थी। लेकिन निमंत्रण था; मैंने कुबूल किया था। आज इतने समय के बाद ये कथा का योग हुआ। मेरा एक निमित्तमात्र यजमान परिवार, जिस परिवार की बुनियाद एक बहुत बड़ी श्रद्धा और शरणागति के साथ मैंने देखी वो आदरणीया रमाबहन जसाणी, उसका भी मनोरथ रहा होगा; उसका ये पूरा परिवार कभी न कभी कथा का निमित्त बन जाता है। और ये कथा का यहां आरंभ हो रहा है। धीरे-धीरे यजमान अच्छा बोलने लगे! बेटी इंग्लिश में अच्छा बोली। और हिन्दी में भी अच्छा कहा। तीनों बोले। तीन भाषा में बोले। तीनों ने अच्छी बातें कही।

बड़ी प्रसन्नता में अच्छे प्यारे माहौल में कथा का आरंभ हो रहा है। और केवल 'स्वांतः सुखाय' क्योंकि कथा के पीछे भी आयोजकों के कई हेतु होते हैं! और हम जीव है; हेतु होते हैं। जैसे तुलसी भी कहते हैं, 'स्वान्तः सुखाय'; हेतु तो है। 'निज गिरा पावन'; हेतु तो है। 'भाषाबद्ध करब मैं सोई।' हेतु तो है। और मैं कहता हूं कि मैं कथा के बिना जी न पाऊं; हेतु तो है। फिर भी न कोई तमोगुणी हेतु, न सत्त्वगुणी हेतु, न कोई रजोगुणी हेतु। ऐसे एक सुंदर पवित्र माहौल में कथा का आरंभ हो रहा है उसकी भी प्रसन्नता है। लगातार पहाड़ों के बीच में कथा हो रही है। कभी केदार ने पुकारा। उसकी इच्छा थी तो वहीं गये। उसके बाद पंचगीनी में, पंचाग्नि में। सूर्यवंशी राम के इर्द-गिर्द जैसे पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है वैसे ये पूरी व्यासपीठ घूम रही है अस्तित्व में। तो वहां कोलोराडो, वहां भी पहाड़ी ये सब था सुंदर रमणीय भू भाग, जिसको दुनिया पृथ्वी का स्वर्ग कहते हैं। हिन्दुस्तान का स्वर्ग कश्मीर कहा जा रहा है। यद्यपि कुछ नापाक तत्त्वों के कारण स्वर्ग कभी-कभी नर्क की याद दिलाता है! लेकिन कश्मीर भारत का स्वर्ग है। और सौराष्ट्रवासी ऐसा कहते हैं कि महुवा सौराष्ट्र का स्वर्ग है। लोग महुवा को सौराष्ट्र का कश्मीर कहते हैं। कश्मीर मीन्स स्वर्ग। वो लगातार प्रकृति के बीच पांचों तत्त्व जहां स्वच्छ दिखते हैं। कितनी सुंदर नदियां और झरनें बह रहे हैं! बिलकुल नीट एन्ड क्लीन। और हजारों करोड रूपये का आयोजन कर चुके हैं फिर भी हमारी माँ गंगा को इतनी स्वच्छ नहीं कर पा रहे हैं! ऐसी सुंदर प्रकृति फिर भी पवित्रता तो गंगा की है। हां, पवित्रता तो गंगा की है। पहाड़ें, वृक्ष, कुदरत के पांचों तत्त्व मानो सुंदर दिखते हैं।

तो मैं सोच रहा था कि इस कथा में कौन सब्जेक्ट उठाऊं? तो फिर मन में प्रेरणा हुई कि लोग इस भूमि को स्वर्ग कहते हैं; हां, अपना भाग अपने पास नहीं रहा! कुछ हमारे देश के आदरणीयों की नासमझी कि भूल कि छोड़ो जो हो, उसके कारण हमारा ये भूमि भाग पड़ोसी छीन के ले गया है! वो तिबत; हिमालय में कैलास। तिबत का एक अर्थ होता है स्वर्ग। ओशो ने भी कभी कहा है कि तिबत स्वर्ग है। तो मेंने सोचा कि इस कथा में मैं स्वर्ग पर बोलूं।

स्वर्गस्थ होना नहीं है। स्वर्ग में जाना नहीं है। लेकिन कम से कम स्वर्ग का दर्शन तो करें। तो मैंने निर्णय किया कि 'मानस-स्वर्ग' इस कथा का केन्द्रीय विषय।

तो 'मानस-स्वर्ग'; तुलसीदासजी ने 'मानस' में केवल तीन बार 'स्वर्ग' शब्द का प्रयोग किया है। नर्क का बहुत बार प्रयोग किया है और नर्क के साथ 'सरग' जोड़ा है। 'सरग नरक अपबर्ग', जो अपभ्रंश किया स्वर्ग का। तो नरक के साथ 'सरग' शब्द आपको बहुत बार मिलेगा, लेकिन शुद्ध संस्कृत शब्द 'स्वर्ग' वो केवल तीन बार 'रामचरितमानस' में है। इसलिए मैं आये दिन गुरुकृपा से जो प्रेरणा होगी उसके आधार पर आपसे संवाद करूंगा।

मेरी कथा के बीच आप खर्चा करके यहां आये हैं; यहां जागरूक रहियेगा। क्योंकि मन की बड़ी मुश्किल है! और आग्रह ऐसा किया है 'मानस' के वक्ताओं ने कि कथा सुनो तो मन, बुद्धि और चित्त से सुनो। क्योंकि मन का स्वभाव चंचल है। एक तो मन चंचल है। उसके साथ हम ओर प्रवृत्ति करे तो मन ओर चंचल होता है क्योंकि मन को खोराक मिलता है। तो मन एक तो स्वाभाविक चंचल है और हम जिस हेतु आये हैं उसी हेतु में भी हमें डिस्टर्ब करता है और दूसरी प्रवृत्ति में हमें डाल देता है, क्योंकि उसको ओर चंचल होना है। तो हम सब कुछ इतना समय हमें मिला है उसीमें मन को विशेष चंचल होने का अवसर न दें।

मेरे कहने का मतलब ये है कि मन जब ऐसे उहापोह में होता है; उसका स्वभाव है; ऐसे समय में यदि हम उसको खोराक देंगे; तुम बच्चे को आईपेड पकड़ाते हो, कभी फोन देते हो; तुम्हें समय नहीं है, तुम्हें छोड़ना है, ले भाई, जा! उसकी आदत बढ़ती जाती है। फिर साधु-संतों के पास शिकायत करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। आप टोटली बेईमान है! क्योंकि उसको आप ओर चतुर किये जा रहे हैं! संकट क्यों है? व्हाय? संकट सबके जीवन में आता है। संकट आये तो पहले ये काम करना, मन को धीर रखना। मेरे पास ये मेरी व्यासपीठ के जितने आश्रित है, फ्लावर्स जो है जिसकी चिंता व्यासपीठ को होती है कि अल्लाह-परमात्मा करे, कभी कोई संकट किसी पर न आये। लेकिन कभी भी आये तो मैं यही कहता हूं कि थोड़ा धैर्य रखो, धीरज रखो। बाकी हम कर भी क्या सकते हैं? लेकिन धीरज एक साधना है; प्लीज़, नोट इट। सामान्य व्यवहार में हम यूझ कर रहे हैं ऐसा सामान्यत: शब्द नहीं हैं। धैर्य है साधना। वरना 'शिवसूत्र' नहीं कहता कि साधो, 'धैर्य कंथा।' थोड़ा धैर्य ये जरूरी है। और मेरा अनुभव और मेरा स्वभाव जो कहो, प्रभु की कृपा कहो, जब ऐसी परिस्थिति आये तो अकेले हो जाओ कुछ समय के लिए। परिवार को पता न लगे कि हमारी उपेक्षा हो रही है ऐसे थोड़ा अकेले पांच मिनट-दस मिनट-पंद्रह मिनट अकेले हो जाओ; चुप हो जाओ।

स्वामी शरणानंदजी को किसी ने पूछा कि कई लोग ऐसे हैं, कुछ पढ़े नहीं, फिर भी वेद की बात कहते हैं तो ऐसा वेदज्ञान कैसे आता है? स्वामीजी ने दो टूक जवाब दिया; मुझे बहुत रास आता है, क्योंकि मेरा अनुभव इससे जुड़ जाता है। स्वामीजी का जवाब था कि ठहरी हुई बुद्धि में विश्व का तमाम ज्ञान अपने आप ऊतरता है। न किताब की जरूरत है, न कोई वस्तु की जरूरत। ठहरी हुई बुद्धि; ठहरा हुआ मन। कबीर कहां वेद पढ़े? ठहरे हुए मन के मालिक थे। गुरुनानक देव कहां वेद पढ़े? ठहरे हुए मन के स्वामी थे। गंगासती क्या पढ़ी? पैगम्बर साहब कितना पढ़े थे? कुछ नहीं पढ़े थे। जिसस क्या पढ़े? बिलकुल अनपढ़ लोग विश्व के समस्त ज्ञान को प्रगट करते हैं अपने जीवन से; उसका उद्गमस्थान है ठहरी हुई बुद्धि। ठहरी हुई बुद्धि में सब ज्ञान प्रगट होता है। तो ऐसे हो तो स्वामीजी ने कहा, एकांत उसकी पाठशाला है और मौन उसका पाठ है। सटीक जीवन उपयोगी सूत्र है। घर में कुछ माहौल बिगड़ा, उपेक्षा न करो; किसी को ये न लगे कि आप रुठे हुए हो। एकांत में चले जाओ। एक शेर सुनाउं; बहुत प्यारा शे'र है; मुझे अच्छा लगा है तो आपको भी अच्छा लगेगा। बहुत प्यारा शे'र है, 'कितना महफूज़ हूं मैं कोने में?' मेरे घर के कोने में मैं कितना पर्याप्त हूं, कितना सुरक्षित, कितना पूर्ण? कोई चिन्ता नहीं।

कितना महफूज़ हूं मैं कोने में?
कोई अडचन नहीं है रोने में।

कोई अडचन नहीं है रोने में। पति या पत्नी अपने काम में चले गये। पति को मुश्किल है। पत्नी बाहर गई। पत्नी को मुश्किल है। बच्चे स्कूल गये। ऐसे समय अपने मन को एक कोने में ले जाओ। हां, बहुत पीड़ा सताये तब कोई कोना; और एक इधर की दीवार और इधर की तीनों ओर से आपके सहयोग को ये खड़े रहते हैं। दूसरा शे'र सुनिये-

मैंने उसको बचा लिया,
वरना डूब जाता मुझे डूबोने में।

कैसे मैं डिस्क्राइब करूं इसको? ये महसूस करने की चीज़ है। उसका अर्थ नहीं किया जा सकता। बदायूं साहब के ये दो शे'र है। तो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं कि एकांत है पाठशाला। फिर इस एकांत में फोन मत लेना। वोट्सअप, फलां-फलां! फोन हमारा गुलाम होना चाहिए। हम उसके गुलाम नहीं होने चाहिए। हम उसके मालिक होने चाहिए। ये तो जो दुनिया में आजकल मैं देखता हूं इसलिए कहता हूं।

तो मन को खोराक न दिया जाय; उसका चांचल्य बढ़े ऐसा उसको न किया जाय। अब क्या होगा? छोड़ दो। ये घटना आई इससे पहले ऐसा था, वो भी छोड़ दो प्लीज़! अपने मन को धैर्य रखो। धीरज में से निकलेगा कि मुझे ये करना है; पीछे की चिंता मैं छोडूं; आगे की चिंता छोडूं। मुझे अब एक चेतना को जनम देना है। अपने परिवार के लिए, मेरे समाज के लिए; मेरे कामकाज के लिए, अभी मेरा ये दायित्व है। उसी क्षण कोई जनम होता है। अस्तित्व भिन्न-भिन्न रूप में सहायक बनता है। मन; क्रम; उसके बाद आप कर्म में जुड़ जाओ, कर्म सफल हो जाएगा। कर्म सफल हो जाएगा अवश्य लेकिन अस्तित्व तुम्हें वचन देता है। अब ये जो मैं बातें कर रहा हूं, ये जो मेनेजमेन्ट सिखा रहे हैं ना तगडी फी लेकर! वो ऐसा बोले तो तगडी फी ले ले! ने बावो साव मफतमां! सोचिये, मैं तो आपके लिए हूं बाप! मेरे जो फ्लावर है, बहुत खिले, कभी मुरझाये ना। तो बड़ा रमणीय प्रदेश है। जिसके समान कुछ रमणीय नहीं ऐसी रामकथा है। इसके समान कौन रमणीय? मेरा स्वर्ग तो मेरे हाथ में है। ये तो आपके सिर पर में रखता हूं कि लो स्वर्ग लेकिन वो तथाकथित स्वर्ग ये नहीं है। ये स्वर्ग क्या है उसकी नौ दिन हम चर्चा करनेवाले हैं।

तो 'मानस' में तीन बार 'स्वर्ग' शब्द का प्रयोग हुआ। एक 'सुन्दरकांड' में। 'सरग' तो बहुत मिलेगा, 'सरग-नरक'; ये 'सरग' मिन्स स्वर्ग ही है, लेकिन एकदम देहाती भाषा में है। लेकिन शुद्ध 'स्वर्ग' शब्द तीन बार है। 'सुन्दरकांड' में है; आप सबको पता है।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।

स्वर्ग मानी तो स्वर्ग है, उसकी व्याख्या करेंगे। अपवर्ग मानी मुक्ति-मोक्ष अथवा तो स्वर्ग से ऊपर की स्थिति जो कहो। तो एक पलडे में स्वर्ग का सुख, मोक्ष का सुख रखा जाये और एक पलड़े में लव सत्संग। लव मानी निमिष परमाणु। लव मानी आज की भाषा में कहूं, लव मानी लव-लव! प्रेमपूर्वक सत्संग किया जाये उसको कहते हैं लव सत्संग। लव सत्संग का आधा अंग्रेजी और आधा अपनी भाषा में अर्थ है प्रेम-सत्संग। इसलिए मैं इसको प्रेमयज्ञ कहता हूं।

सत्संग के कई अर्थ हो सकते हैं। स्वामी शरणानंद कहते हैं, मौन सत्संग। तलगाजरडा का शब्द है 'मुक्त सत्संग'; कोई बंधन नहीं। जिसको जो बोलना है बोले लेकिन बारी आये तब! मुक्त सत्संग; मौन सत्संग; मुस्कुराहट भी तो एक सत्संग है। आप किसी के सामने केवल एक मुस्कुराहट दो, सत्संग है साहब! तो प्रेम सत्संग है। एक पलड़े में स्वर्ग और अपवर्ग का सुख रख दिया जाये तो दूसरे में लव सत्संग, प्रेम से किया हुआ बुद्धपुरुष का संग; कोई बुद्धपुरुष के साथ चुपचाप बैठे हैं। और ध्यान देना, बुद्धपुरुष सबसे श्रेष्ठ कोना है, जिसकी गोद में सर रखकर रोये। दुनिया ने तो रुलाया, जाये तो जाये कहां? तो फिर वो अस्तित्व बचन देता है, तेरा संकट दूर हो जाएगा। 'संकट से हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै।' इन तीन। ध्यान मानी बैठ जाना ऐसे नहीं; वो भी ध्यान है चलो; ध्यान बहुत प्यारा प्रयोग है लेकिन यहीं ध्यान मानी ये तीन बातें पर जो ध्यान दे; या तो संकट बिलकुल दूर हो जाएगा, या तो संकट मुस्कुराकर के सहन करने की आदत पड़ जाएगी। एक जीवन का स्वभाव बन जाएगा संकट; उसके बिना फिर अच्छा नहीं लगेगा। पीर भी मीठी होती है; चुभन भी स्नेह का एक प्रतीक बन जाती है।

तो मूल तो सुंदर रमणीय भू भाग में बैठे हैं दुनिया में। इससे कोई रमणीय नहीं है मेरे निज मत में, ऐसी रामकथा गाई जा रही है और ऐसे रमणीय मनोभाव से आयोजन हुआ है; ऐसे माहौल में आप आये हैं तो बस, साढ़े नौ बजे कथा शुरू हो उसके बाद थोड़ा मन दीजिए मेरी व्यासपीठ को। और प्रसन्न मन दीजिए। कुछ काम हो जाएगा। बड़ी तसल्ली लेकर हम यहां से लौटेंगे। बाकी तो फिर आधा दिन खाली है; घूमो, फिरो, एन्जोय करो बाप! आये हो, लेकिन घूमने के लिए नहीं आये हो;

जीवन को घुमा देने के लिए आये हो। जीवन को एक मोड दे; जीवन को एक टर्न देना। ऐसे पावन माहौल में रामकथा का आरंभ हो रहा है तब 'मानस-स्वर्ग' है इस कथा का विषय। एक-दो दिन पहले मैंने दिमाग में आया, निर्णित कर लिया। और आप 'मानस' में देखियेगा, फिर स्वर्ग के पर्याय शब्द बहुत मिलेंगे। 'सुरलोक', 'सुरधाम', 'अमरावती' ये सब स्वर्ग के पर्याय शब्द है, बहुत-से है। लेकिन 'स्वर्ग' शब्द तीन बार है। तो एक 'सुन्दरकांड' में; दो बार 'उत्तरकांड' में आया है। आइए, फिर एक बार इन स्वर्गवाली दो पंक्तियां जो इस कथा की नींव है, भूमिका है उसका हम गायन करें।

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।
तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।

पहली पंक्ति का अर्थ है, जहां 'स्वर्ग' शब्द आया है, तुलसीजी कहते हैं कि यही तन का इस, शरीर का फल विषय नहीं है क्योंकि स्वर्ग भी स्वल्प है, शाश्वत नहीं है। और अंत दु:खदाई, आखिर में स्वर्ग भी दु:ख देता है। 'गीता' में कहा है, कुछ सुख आरंभ में अमृत जैसे होते हैं लेकिन परिणाम में विषयी हो जाते हैं। कुछ सुख ऐसे हैं जो आरंभ में विषयी हैं लेकिन आखिर में अमृत से भी उत्तम होते हैं। तो स्वर्ग स्वल्प है। 'छांदोग्य उपनिषद' मैं लिखा है कि भारतीय लोगों को अल्प में रुचि नहीं है। दुनिया छोटे-छोटे सुखों में राजी हो जाती है। मेरे देश का मनीषी, मेरे देश का ऋषि कहता है, हमें अल्प में सुख नहीं है। तो स्वर्ग यदि अल्प है तो हमें स्वर्ग की कोई रुचि नहीं है। हमें तो 'नाल्पे सुखं अस्ति।' थोड़े में हमें सुख नहीं मिलता। हमारा सुख हमें पूरा चाहिए। हां, जरूरतों में हम अल्प में गुजारा कर लेते हैं ये बात ओर है। जैसी रोटी मिली, खा ली; जैसा आवास मिला, रह लिया। लेकिन जो परमसुख की बात है, वहां हम सौदा नहीं करते। भारतीय मुनि कहता है, हमें अल्प नहीं, हमें पूरा चाहिए। और गोस्वामीजी कहते हैं, स्वर्ग स्वल्प है, छोटा है, कम आयु है, दीर्घायु नहीं। और चलो, कम आयु, जितना मिला लेकिन तुलसी कहते हैं, कम आयुवाला स्वर्ग भी आखिर में दु:खदाई होता है, दु:ख ही देता है।

'भगवद्गीता' का भी न्याय है कि जब आदमी के पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब वो स्वर्ग से निकाल दिये जाते हैं। तो मेरे बाबाजी कहते हैं, 'एहि तन कर फल बिषय न भाई।' इस शरीर का फल विषयी नहीं। तो विषयी पांच है। देखना विषयी हैं; बोलना, रस लेना विषयी है; सुनना विषयी है; स्पर्श करना विषयी है;

खाना, बोलना, रस लेना ये सब विषयी है; तो क्या विषयी ये शरीर का फल नहीं है? तुलसी ने मना कर दिया। मेरे दिमाग में बैठनेवाली बात नहीं है ये। सुनना यदि विषयी है और विषयी इस शरीर का फल नहीं है, ऐसा तुलसी कहते हैं तो क्या कथा न सुने? तो कथा तो सुननी पड़ती है। और श्रवण यदि विषयी है और विषयी इस शरीर का फल नहीं है तो पूरी श्रवणभक्ति पर छेद लग जाएगा! आंख देखती है ये विषयी है देखना तो क्या हम देवदर्शन न करें? हम सुंदर पहाडों को न देखें? हम संत के दर्शन न करें? ग्रंथदर्शन न करें? तो तो सूत्र गलत हो जाएगा! जीभ यदि विषयी है, बोलना विषयी है, चलो विषयी है, लेकिन इस शरीर का फल बोलना नहीं है तो मैं रामकथा न बोलूं क्या? हम हरिनाम न लें क्या? संकीर्तन न करें? क्या कोई गीत न गायें? कैसे समझें? स्पर्श करना विषयी है और शरीर का फल विषयी है तो क्या हम स्पर्श न करें? बच्चे के सिर पर हाथ न रखें? 'मानस' की पोथीजी को हाथ न छुएं? रस यदि विषयी है तो क्या हम प्रेमरस न पीयें? और तुलसी कहते हैं, इस शरीर का फल विषयी नहीं है। विषयी फल नहीं है; यस, लेकिन विषयी फूल है। सुनना फूल है, फल बाकी है साहब! अभी तो सुने जा रहे हो, अभी फल बाकी है। और हम केवल सुनने को ही फल माने तो रस तक कैसे पहुंचेंगे? हमें फूल से रस तक जाना है वाया फल। तो ये जो है सुनना-बोलना ये शरीर का फल नहीं है; शरीर का फूल है। बोलो ऐसे कि फूल झरे। नाज़िर का एक गुजराती शे'र है-

अमे जाण्युं के तमारुं जिगर बाग जेवुं छे,
कोणे कह्युं के हसवाथी फूलडां झरे नहीं।

कौन कहता है कि आप मुस्कुराओगे और फूल न गिरे? तो बोलना फूल है, फल नहीं है। सुनना फूल है, फल नहीं है। फल और रस क्या है उसकी आगे चर्चा करनी होगी, तात्त्विक-सात्त्विक चर्चा। बच्चे को छुना ये विषयी है अवश्य, लेकिन फूल है, फल नहीं है। रात-दिन आप लड्डु गोपाल को स्नान कराते हो, स्पर्श करो ये बहुत अच्छा है। लेकिन अभी ये फूल है; फल तो ये है जब लड्डु गोपाल तुम्हारे साथ बोल रहा है ऐसा महसूस हो। तो देखना, बोलना, सूंघना, छूना ये सब शरीर के फल नहीं है, शरीर के फूल है और कोई कहे कि शरीर के कारण हम स्वर्ग को प्राप्त कर ले तो मेरे बाबाजी कहते हैं, स्वर्ग भी अल्प है। गिरा दिए जाओगे। और आखिर में दु:ख कुछ नहीं। तो इस पहली पंक्ति का ये अर्थ है।

दूसरी पंक्ति का पहले शब्दार्थ समझ लीजिए, फिर उस पर नौ दिन हम संवाद करेंगे। वहां सज्जन की, संत की, महापुरुष की, बुद्धपुरुष की स्वभाव की महिमा बताई। किसको कहोगे संत? किसको कहोगे बुद्धपुरुष? किसको कहोगे महामानव? अच्छा आदमी किसको कहोगे? तो तुलसी एक लक्षण बताते हैं, 'प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।' जिसको सज्जन लोग के संग में प्रीत हो बस। अच्छे लोगों के साथ जिसकी प्रीत हो। 'तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।' जीवन के समस्त विषय सुख, स्वर्ग का सुख और मोक्ष सुख ये तीनों को जो तिनके के बराबर समझे, एक तृण जैसे समझे। ये विषय के सुख है, लेकिन तृण है। तृण की जितनी महिमा, उतनी उसकी महिमा बस, ज्यादा नहीं। तृण की भी महिमा है। दुर्वा अंकुर जो है, दुर्वा का घास है, इस तृण की महिमा है जो हम गणेशजी पर चढ़ाते हैं, लेकिन है तृण। तो जिस व्यक्ति के जीवन में समस्त विषय, स्वर्ग और मोक्ष ये तीनों तिनके के बराबर हैं, ऐसे सज्जनों से प्रीति जिसकी कायम है वहां तुलसी ने 'स्वर्ग' शब्द का उपयोग किया। लेकिन तिनके के बराबर स्वर्ग को बताया।

तो ये स्वर्गवाली दो पंक्तियां लेकर इस कथा का आरंभ कर रहे हैं, 'मानस-स्वर्ग।' आये दिन उसकी बातें करते रहेंगे, जो भगवद्कृपा से स्मरण में आयेगा। तो इतनी ये भूमिका बनाकर के कथा का मंगलाचरण करें। सातों सोपान में स्वर्ग है, ध्यान देना। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड'; नामभेद, शब्दभेद लेकिन संकेत एक स्वर्ग है। सातों में स्वर्ग है और ये स्वर्ग की बात है जिसको हम उपर हाथ उठाकर बताते हैं कि स्वर्ग लेकिन 'बालकांड' का स्वर्ग क्या है, सही में उसकी चर्चा गुरुकृपा से करेंगे। 'अयोध्याकांड' का स्वर्ग क्या है, इसकी चर्चा हम गुरुकृपा से करेंगे। 'अरण्य' का, 'किष्किन्धा' का, 'सुन्दर' का, 'लंका' का, 'उत्तर' का स्वर्ग; विशेष उसका दर्शन करने की गुरुकृपा से कोशिश करेंगे। तो ये 'मानस-स्वर्ग'। और सीधासादा एक अर्थ तो यही हो जाएगा कि ये 'मानस' जो मानस मानी हृदय; अपना हृदय ही स्वर्ग है, बाहर मत ढूंढो, कहां ढूंढोगे?

तो बाप! मानस-हदय ये हमारे लिए स्वर्ग है लेकिन वो स्वर्ग नहीं है। यहां जो स्वर्ग की चर्चा है, कुछ सबसे बिलग है; जो संत ने कहा है, तुलसी ने कहा है।

तो सातों सोपान में नामभेदे स्वर्ग का ज़िक्र है, लेकिन व्यासपीठ की दृष्टि से सातों कांड का आध्यात्मिक स्वर्ग क्या है उसका मंथन करेंगे, उसको देखेंगे। तो आज इतना करके 'रामचरित मानस' का प्रथम सोपान, उसके हम मंगलाचरण के एक-दो मंत्र बोल लें और प्रवाही परंपरा से विशेष पवित्र हो जाये।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

मंगलाचरण किया। फिर बिलकुल लोकबोली में, तत्कालीन समाज जिस भाषा में श्लोक को समझ पाये इसलिए लोकबोली में तुलसी उतर आये और हमारी बोली में उसने इस महान सद्ग्रंथ का आरंभ करते हुए पहले गणेश का स्मरण किया। गणेश, सूर्य, भगवान विष्णु, भगवान महादेव और दुर्गा पंचदेवों के स्मरण के बाद तुलसी ने लिखा। मैं बार-बार बोलता रहा हूं और जरूरत है इसीलिए बार-बार रिपिट करता हूं कि हम भारतीयों, हम वैदिक धर्मावलंबियों, हम हिन्दु समाज, 'हिन्दु' शब्द यहां संकुचित अर्थ में नहीं प्रयोजित कर रहा हूं; हमारी पूरी परंपरा में हमारे जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भगवान ने कहा कि आप यदि वेद अनुशासन में है तो तुम पांच देवों की आराधना करो। गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और दुर्गा ये पंचदेवों की वंदना और स्मरण; उसकी आराधना। और हमारा देश, हमारी जनता इस विचार को वैश्विक विचारधारा के लिए जो हम बैठे हैं वो गणेश की पूजा हर शुभ कार्य में मंगलकार्य में करते हैं। अभी ये भाद्रपद लगेगा तो उसमें गणेश पूजा का महत्त्व होगा। दुर्गा की पूजा हम करते हैं। विष्णु भगवान की पूजा करते हैं; अवतारों के रूप में महोत्सव करते हैं। सावन मास में रुद्राभिषेक आदि करते हैं। सूर्य का नमस्कार; हम सूर्यजीवी लोग है, सूर्यवादी लोग है; हम प्रकाशवादी लोग है; सूर्य के साथ हमारा रिश्ता है।

तो युवान भाई-बहनों, मैं हर वक्त कहता रहता हूं कि स्थूल रूप में भी उसकी पूजा की महिमा है, लेकिन उसका तात्त्विक अर्थ है; गणेश की उपासना मानी विवेक रखना ये गणेश की उपासना है। दुर्गा की उपासना मानी हमारे धर्म, हमारे शास्त्र, हमारे देवताएं, हमारे ऋषिमुनि उस पर श्रद्धा; अंधश्रद्धा नहीं, श्रद्धा बनाये रखना। शंकर का अभिषेक मानी अखंड विश्वास ये शिव का अभिषेक है। और सूर्यपूजा; उजाले में रहने का शिवसंकल्प; हम अंधेरे में नहीं रहेंगे। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' ये प्रकाशजीवी हम लोग है। सूर्यजीवी, सूर्यवादी लोग है हम। और विष्णु भगवान का अर्थ है व्यापक। हमारी दृष्टि विस्तरित रहे। भारतीयों का दर्शन कायम विस्तारपूर्वक रहा है साहब! नासमझ लोग कहां उसको समझ पाये? बाकी अंततोगत्वा तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसा वैश्विक दर्शन तो विश्व में किसी ने नहीं दिया। ये है विष्णु, व्यापक तत्त्व। तो हृदय को व्यापक रखना विष्णुपूजा, तात्त्विक अर्थ; वो तो करनी है, ध्यान देना। विवेक में जीना गणेशपूजा। श्रद्धा को अकबंध रखना दुर्गापूजा। अखंड विश्वास में जीना शिव अभिषेक और विशाल दृष्टि से जीना है विष्णुपूजा। तो पंचदेवों की बात कहकर तुलसी ने कहा कि मेरे लिए पांचों मेरे गुरु है। गुरु ही मेरा विष्णु है। गुरु ही मेरी गौरी है। गुरु ही मेरा शिव है। गुरु ही मेरा प्रकाश है। गुरु ही मेरा गणेश है। इसलिए तुलसी कहते हैं-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

हमारी पूरी परंपरा गुरुपद परंपरा रही है साहब! कुछ लोग गुरु में नहीं मानते हैं अथवा तो उसकी आलोचना करते हैं! ये छोड़ो! उसका संस्कार, उसके घराने की बात कर रहे हैं! हमें क्या लेना-देना? बाकी भारत और हम लोग प्रवाही गुरु परंपरा; वही गुरुपूर्णिमा की पूरे विश्व में महिमा गाई गई। मेरी समझ में इस बार नहीं आया कि मुझे खबर नहीं, शायद मैं न देख पाया हूं अखबार में कहीं आया हो, न सुन पाया लेकिन हमारे देश के राष्ट्रनायकों ने गुरुपूर्णिमा की बधाई क्यों नहीं दी? या तो मुझे पढ़ने में नहीं आया या तो मैंने सुना नहीं या तो हमारे आदरणीय लोग व्यस्त होंगे! यदि जो कहीं हो तो मैं कल सुधार करके बताऊंगा। लेकिन मैं गुरुपूर्णिमा के दिन से प्रतीक्षारत हूं कि गुरुपूर्णिमा की जो महिमा है वो तो वैश्विक है; ये कोई सांप्रदायिक थोड़ी है? किसी ने जिसस को गुरु माना। किसी ने सुकरात को गुरु माना। किसी ने पैगम्बर को गुरु माना। किसी ने किसी को गुरु माना। गुरु व्यापक है। गुरुपूर्णिमा पर समस्त बुद्धपुरुषों को राष्ट्रनायकों को वंदन करना चाहिए। उसके चरणों में स्पर्श करना चाहिए। खैर! भुलाइ गयुं होय। घणुं भुलाइ जाय ने यार! मुझे तो जो लगेगा वो मैं संदेशमूलक दृष्टि से बोलता हूं। मुझे किसी से क्या लेना-देना है? मैं तो सबसे डिस्टन्स बनाये बैठा हूं। लेकिन गुरुपूर्णिमा कोई सामान्य दिन समझते हैं? बाप! अद्भुत दिन है गुरुपूर्णिमा।

तो अभी-अभी गुरुपूर्णिमा पूरे संसार ने मनाई। मैं तो कहता हूं, ये त्रिभुवनीय दिन है। त्रिभुवनीय दिन है उसका नाम है गुरुपूर्णिमा। दुनिया का कोई भी बुद्धपुरुष शरदपूर्णिमा से सगर्भ होता है और गुरुपूर्णिमा के दिन अपनी समस्त चेतनाओं को जनम देता है। ये नौ महिने का आध्यात्मिक गर्भ है। और 'मानस' ही क्या, लोकमानस; कोई भी माँ सगर्भा होती है उसमें तेज आने लगता है; सौन्दर्य बढ़ता है। शरदपूनम का तेज होता है ना! और फिर नौ महिना पूरा होता है। जो बुद्धपुरुष होते हैं वो शरदपूर्णिमा को सगर्भ हो जाते हैं। गुरुपूर्णिमा के दिन चेतनाएं बिखरती है, पात्र पर भी, कुपात्र पर भी। हजारों चेतनाओं के दीप उसको गुरुपूर्णिमा के दिन प्रज्वलित करने होते हैं। तो गुरुमहिमा बहुत बड़ी है मेरी समझ में। कोई न माने उसकी स्वतंत्रता है, छोड़ो! लेकिन निंदा तो न करो यारो! न मानो तो न मानो! आपको गुरु न भाये तो छोड़ो लेकिन निंदा क्यों करते हो कि गुरु एजन्ट है! गुरु वाया है! तुम धंधें की बात गुरु से क्यों जोड़ते हो? और कहनेवाले सामान्य लोग नहीं थे! कभी-कभी बड़े विचारकों ने भी कहा था! कभी ओशो ने भी ऐसी आलोचना कर दी कि गुरु एजन्ट है! मैं नहीं कबूल करता। ओशो की कितनी अच्छी बातें मैं नाम लेकर अहोभाव के साथ करता हूं। ओशो के लिए तो मैंने पूरी कथा की। लेकिन गुरु को कोई एजन्ट कहे, दलाल कहे! तथाकथित गुरु शायद हो भी लेकिन जिसको बुद्धपुरुष कहते हैं उसकी महिमा गज़ब है!

गुरु, तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीअे ...

'रामचरितमानस' का पहला प्रकरण यदि कोई है तो वो गुरुमहिमा है, गुरुवंदना है। 'बंदउ गुरु पद पदुम परागा।' कहकर तुलसी ने जो पूरी 'मानस-गुरुगीता' का गायन किया है। कोई भी गुरु हो उसको आप मानो लेकिन उस गुरु से भी कई बुद्धपुरुष जगत में हो गये हैं उसका अपमान मत करना। बुद्ध को माननेवाला महावीर का अपमान करे तो उसने गुरुभक्ति खंड़ित कर दी। आपका अपना गुरु अपनी दृष्टि में परमात्मा ही है लेकिन और भी तो है। आदर न हो तो न हो लेकिन अपमान न करे; डिस्टन्स बनाये रखो; उदासीन रहो। ऐसे गुरु की वंदना मेरे गोस्वामीजी ने की है-

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।

तो पहले प्रकरण में गोस्वामी ने गुरुमहिमा और गुरुवंदना का गायन किया। गुरु की चरणरज से मेरी दृष्टि को विवेकमय करके मैं 'रामचरितमानस' का वर्णन करने जा रहा हूं, ऐसा शिवसंकल्प रखा और आंख गुरुकृपा से पवित्र हुई ही तो पूरा जगत उसको राममय दिखा। फिर उसी वंदनाक्रम में माँ कौशल्या की वंदना की; महाराज दशरथजी की; जनकजी की; भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण आदि भ्रातृवंदना की। उसके बाद श्री हनुमानजी महाराज की वंदना करते हैं। उसके बाद सखाओं की और सीता-रामजी की वंदना करके क्रम में रामनाम महाराज की वंदना करते हैं। लेकिन बीच में वो श्री हनुमानजी की वंदना करते हैं। हनुमंतवंदना के साथ आज की कथा को विराम दें-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।
मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल-अमंगल-मूल-निकंदन।।

सत्संग के कई अर्थ हो सकते हैं। स्वामी शरणानंदजी कहते हैं, मौन सत्संग। तलगाजरडा का शब्द है 'मुक्त सत्संग'; कोई बंधन नहीं। जिसको जो बोलना है बोले लेकिन बारी आये तब! मुक्त सत्संग; मौन सत्संग; मुस्कुराहट भी तो एक सत्संग है। आप किसी के सामने केवल एक मुस्कुराहट दो, सत्संग है साहब! तो प्रेम सत्संग है। एक पलड़े में स्वर्ग और अपवर्ग का सुख रख दिया जाये तो दूसरे में लव सत्संग, प्रेम से किया हुआ बुद्धपुरुष का संग; कोई बुद्धपुरुष के साथ चुपचाप बैठे हैं। और ध्यान देना, बुद्धपुरुष सबसे श्रेष्ठ कोना है, जिसकी गोद में सर रखकर रोये।

मानस
स्वर्ग
२

'मानस' के सातों कांड के सात भिन्न-भिन्न स्वर्ग है

'मानस-स्वर्ग', जो इस नौ दिवसीय रामकथा का केन्द्रीय संवाद है उसमें कुछ आगे बढ़ें। स्वर्ग के बारे में, नर्क के बारे में कल भी एक जिज्ञासा मुझे मिली थी। आज भी कुछ मिली है। कुछ बातें बाद में लूं। मैंने कल आपसे निवेदन किया था कि सातों सोपान में एक अपना-अपना स्वर्ग है। जहां तक संभव हो, जागृति से सुने। ये सात स्वर्ग है, जो स्वर्ग की बातें आती है ग्रंथों में, शास्त्रों में इवन 'मानस' में भी। मैं फिर एक बार स्पष्टता करूं कि मैं स्वर्गवादी नहीं हूं। मुझे स्वर्ग से कोई लेना-देना नहीं है। इतना ही नहीं, मैं मोक्षवादी भी नहीं हूं। लेकिन जब ये सब बातें शास्त्रों में है, ऋषिमुनियों के द्वारा वर्णित है तो इसका भी कोई स्थान है; वो भी कुछ महत्त्व रखता है। इसलिए उसकी चर्चा-संवाद जरूरी है। लेकिन गोस्वामीजी कहते हैं, वो स्वर्ग है तो अच्छा लेकिन अल्प है, समग्र नहीं है। और जो समग्र स्वर्ग है वो 'मानस' के सातों कांडों में गुरुकृपा से मेरी समझ में जो आये सो मैं आपसे निवेदन करूं। पूरा 'बालकांड' आप ले लीजिए; उसमें थोड़ा धोखा है, छल है। यस, प्रतापभानु के साथ कपटमुनि ने, कालकेतु ने छल किया है। लेकिन पूरे 'बालकांड' में कहीं किसी से युद्ध और वैर की बात नहीं है। लड़ाई-संघर्ष ये नहीं है। थोड़ा है कहीं-कहीं। मैं ऐसा समझ रहा हूं कि पूरा का पूरा कभी नष्ट नहीं होनेवाला एक स्वर्ग है हमारे हृदय में 'बालकांड' का स्वर्ग वो है किसी के प्रति वैर का न होना। किसी के भी प्रति हमारे दिल में कभी भी वैर प्रकट न हो ये है 'बालकांड' का स्वर्ग। त्रिभुवन दादा कहा करते थे; मैंने एक बार कथा में कहा है; एक वाक्य बड़ा ब्रह्मवाक्य था मेरे लिए। दादा कहते थे कि बेटा, अतिशय संस्कार अच्छे नहीं है। बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है। शायद ये तलगाजरडा ही कह सकता है। अत्यंत आचार और संस्कार ठीक नहीं है। सम्यक् होने चाहिए। कई पंथों में, कई विचारधारा में संस्कार कई अति है। न छुओ; बार-बार हम नहा लेंगे; ये करेंगे, ये करेंगे। समाज पर तो प्रभाव अच्छा पड़ता है, आदमी बहुत संस्कारी है लेकिन अति संस्कार ज़ंजीर है। क्यों ये जीवन सरल-तरल न बहे? हमें बहुत मना किया।

मुझे कई दिन पहले शायद मुंबई में इस बार मैं आ रहा था तभी पूछा गया कि अब बुद्धपुरुष पैदा क्यों नहीं होते? क्यों कोई कबीर नहीं आ रहा है? क्यों कोई नानक नहीं आ रहा है? क्यों कोई आता ही नहीं? क्या हुआ? संसार में सतजुग से ज्यादा मात्रा में भोग-विलास और विषय-सुख की भरमार है और इतनी बस्तियां बढ़ रही है। लेकिन कोई कबीर पैदा क्यों न कर पाये हम? कोई विवेकानंद पैदा कर पाये हम? क्या सब संन्यासी हो गये? सब विरक्त है? सब संयमी है? बहुत मात्रा में भोग भोगे जा रहे हैं। बस्ती उसकी प्रतीति है; प्रमाण है पूरे विश्व की बस्ती। तो क्यों हम नहीं पैदा कर पाये? इसका एक ही मतलब है कि भोग भोगना बुरी चीज़ नहीं है, लेकिन भोगवृत्ति से विषय का सेवन ठीक नहीं। विषय सेवन वासनावृत्ति से होता रहा। विषय सेवन उपासनावृत्ति से हो जाये तो घरघर में राम पैदा हो जाये। भोग, विषय-सुख की मना नहीं है, क्योंकि हम वासनावृत्ति से भोगे जा रहे हैं संसार को तब कुछ गड़बड़ है। उपासनावृत्ति से भोगा जाये तो विषय भोगना बुरा नहीं है। ये फूल है। लेकिन हमारी यात्रा फूल तक रुकनी नहीं चाहिए, फल तक जानी चाहिए। हमारी यात्रा फल के बाद रस तक जानी चाहिए। इसलिए सत्संग है। मैं पढ़ रहा था सुबह मज़बूर साहब की एक कविता। भगवान से थोड़ा विवाद कर रहे हैं मजबूर साहब। फ़कीर जैसा आदमी था मजबूर। क्या ये पहाड़ी, ये सुंदर नदियां बह रही है ये न देखें? पक्षीयों के गीत न सुनें? भगवद्कथा न सुनें? तो मज़बूर साहब कहते हैं-

चमन को बहारों से किसने सजाया?

हे अल्लाह मियां, जवाब दे, इस दुनिया में चमन को फूलों से किसने सजाया है? जवाब दे! मज़बूर साहब कहते हैं-

चमन को बहारों से किसने सजाया?
दी गुल को खुश्बू रंगी बनाया।
हंसी ज़िंदगी को इतना बनाया।

फिर हमसे कहते हैं कि-

दिल न लगाओ अजब महेरबां हो,
अजब तुम खुदा हो।

इतना खुबसूरत माहौल बनाया और कहते हैं, देखो ना; देखो ना; दिल मत लगाओ; दिल मत लगाओ। हां, बैरागी हो जाओ, अति संस्कारी हो जाओ। तलगाजरडा का सूत्र पचाना साहब!

मैंने गत कथा में जीवन के अर्थ की चर्चा करते हुए कहा था; आपने सुना होगा कि वो जीवन है जिसमें कोई अभाव न हो; हम डकार कर सके। और अभावमुक्त जीवन केवल संतोष से होता है; नई-नई चीज मिलने से कभी नहीं होगा। वो जीवन है मेरी व्यासपीठ की दृष्टि में जो पराधीन न हो। निरंतर पराधीनता वो क्या जीवन है? 'मानस'कार ने तो फरमा दिया, 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' वो जीवन है जो भजन में डूबा है; जो बंदगी में रहता है; हरिचर्चा में रहता है। ये भी एक जीवन का अर्थ है। और वो ही जीवन है जिसमें नीरसता न हो। जगत बेकार है, मिथ्या है, इसमें कुछ नहीं है, ये सब बेकार है! ऐसे झूठे बैरागी मत बनो। सत्य का अनादर न किया जाये। तुलसी सौंदर्य सेवी है। यस, रसिकता होनी चाहिए। इसका गलत अर्थ न किया जाये। आपको मैं बार-बार सावधान करूं। गलत अर्थ करो तो जिम्मेवारी आपकी। नीरसता ये जीवन की व्याख्या मेरी व्यासपीठ में नहीं है। आदमी रसिक होना चाहिए। क्योंकि हमारा ईश्वर, हमारा पूर्णावतार भगवान कृष्ण रसरूप है। राम रसेश्वर है। 'रसो वै सः।' भगवती श्रुति कहती है। 'हरि पद रति रस बेद बखाना।' तुलसी कहते हैं।

तो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं कि जो अल्प सुख है स्वर्ग और समग्र सुख है 'बालकांड' का वो है निर्वैर मनःस्थिति। किसी के सामने आपके मन में कोई विरोध नहीं, सपने में भी नहीं तो आप समझो, आप समग्र स्वर्ग का अनुभव कर रहे हैं। जिस स्वर्ग से कभी पतन होने की संभावना नहीं है ये अल्प नहीं है; अंत में दुःखदायी भी नहीं है। 'बालकांड' को मैं तलगाजरडी आंखों से इस रूप में देखता हूं। 'अयोध्याकांड' का स्वर्ग है जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का सहर्ष स्वीकार; ये स्वर्ग है जो अल्प नहीं है, समग्रतया है। बाजे बज रहे थे रामराज्य के और दूसरी ही सुबह वल्कल परिधान करके वन जाने की नौबत आ जाये तो भी प्रसन्नता चेहरे पर वो की वो ही बनी रहे। मैं बोल रहा हूं, आसान है; आप सुन रहे हैं वो भी बहुत अच्छी बात है। लेकिन मेरी व्यासपीठ 'अयोध्याकांड' का उसको स्वर्ग कहती है जो हरेक परिस्थिति को स्वीकार करे बस। अपना कुछ चलनेवाला नहीं है फिर क्यों शिकायत है? नियति नियति है। सयाना आदमी स्वीकार कर लेता है। सुख आया, दुःख आया; गालियां दी, किसी ने प्रशंसा की; क्या फ़र्क पड़ता है? थोड़ी आदत तो डालनी पड़ेगी।

आप कभी भी शांति से सोचो। न सोच सको तो सुनो। आदमी अपने क्षेत्र में जितना अधिक श्रेष्ठ इतनी ज्यादा उसकी समस्याएं होती है। नोट इट। क्योंकि ये नियति का एक समानांतर दौर है। किसी भी क्षेत्र में आप ज्यादा आगे बढ़ो, समस्याएं साथ-साथ आयेगी; क्योंकि समस्याएं सोचती है कि मैं भी प्रेम करूं; दुनिया उसको प्रेम करती है तो मैं क्यों पीछे रहूं? तो दुःख भी प्यार करने के लिए पीछा करते हैं। ये नियम है, छोड़ेगी नहीं। उसी समय एक ही वस्तु मदद कर सकती है गुरुआश्रय और हरिनाम। श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभ भगवान का एक ग्रंथ है 'विवेक धैर्याश्रय।' विवेक धैर्य का आश्रय। विवेक, धैर्य और आश्रय; महाप्रभुजी का जो निवेदन है, क्या कृपा की है श्रीमन् महाप्रभुजी ने! षोडश ग्रंथ जो भगवान के हैं इनमें से ये 'विवेक धैर्याश्रय।' बहुत अद्भुत बात करते हैं। विवेक में चार विघ्न है। ये महाप्रभुजी कहते हैं। एक, प्रार्थनावृत्ति। अब ये महाप्रभुजी ही कह सकते हैं। दूसरा, अभिमानवृत्ति। तीसरा, आग्रहवृत्ति। और चौथा, हठवृत्ति। आप परमात्मा से बार-बार मांग-मांग करो, ये हो जाये, ये हो जाये; महाप्रभुजी कहते हैं, ये विवेक नहीं है। ईश्वर की सर्वज्ञता का खंडन मत करो। निरंतर बस मांग-मांग! प्रार्थनावृत्ति को विवेक का बंधनतत्त्व बताया। दूसरा, अभिमानवृत्ति। मैं इतने घंटे सेवा में बैठता हूं। मैं ठाकुरजी को झारीजी धरता हूं, मैं फलां करता हूं, ये जो अभिमान आ जाता है वो वृत्ति विवेक की बाधक मानी गई। आग्रहवृत्ति को विवेक का बंधन माना गया है। और हठवृत्ति। ऐसी कुछ पृष्टिमार्गीय वृत्तियां है। मुझे बहुत प्रिय लगती है सब।

तो एक विवेक की जरूरत पड़ती है। स्वीकार में विवेक की जरूरत पड़ती है कि किसको भीड़ नहीं पड़ी है? ये जो प्रसन्नता है। स्वीकार ये 'अयोध्याकांड' का स्वर्ग है मेरी समझ में; जो अल्प नहीं है, समग्र है; जिसमें कभी पतन होने का भय नहीं। दुःखदायी नहीं हो पाता। 'अरण्यकांड' का मेरी समझ में स्वर्ग है तपस्या; ये स्वर्ग है 'अरण्यकांड' का। तपस्या स्वर्ग है। तप स्वर्ग है; सम्यक् तपस्या स्वर्ग है जो समग्र है। चौथा सोपान 'किष्किन्धाकांड'

का स्वर्ग है पतंजलि का सूत्र लेकर कहूं तो मैत्री। ये पूरी दुनिया से है मैत्री। बुद्ध का भी यही सफल प्रयोग है मैत्री। ये स्वर्ग है। वियोग में जीना ये 'सुन्दरकांड' का स्वर्ग है। हम मान बैठे हैं कि संयोग ही स्वर्ग है। ये अल्प है। वियोग समग्र स्वर्ग है। संस्कृत साहित्य में तो वियोग और संयोग में तुलना करनी होती है तो प्रेमी सदैव वियोग की ही पसंदगी करता है क्योंकि ये समग्र स्वर्ग है, जिसके अंत में दुःख नहीं है। 'लंकाकांड' का स्वर्ग है मेरे भाई-बहन, क्रमशः धीरे-धीरे अनावश्यक वस्तुओं का त्याग। हम घर में आवश्यक न हो इतनी कितनी चीज़ें रखते हैं! ये स्वर्ग होगा कि हमने इतना इकठ्ठा किया लेकिन स्वल्प है। समग्र सुख है अनावश्यक वस्तुओं का विवेकपूर्ण परित्याग। ये मैं आलोचना नहीं कर रहा हूं। मैं खुश हूं, आप ज्यादा से ज्यादा सुखी रहो। कौन अभागा हो, तुम्हारा सुख देखकर दुःखी हो? मैं इसकी आलोचना नहीं कर रहा हूं प्लीज़, आप मुझे समझिये। संग्रह आंदोलन पैदा करता है। संग्रह स्पर्धा पैदा करता है। संग्रह दीवार पैदा करता है। संग्रह दरवाज़ें बंद कर देता है। और फिर अतिशय संग्रह अभिमानी बना देता है। वसीम बरेलवी साहब का एक शे'र है-

आसमां अपनी बुलन्दी पर इतना उतरता है।
वो भूल जाता है कि तू जमीं पर से नज़र आता है।

तू लाख ऊंचा हो लेकिन तेरे दर्शन जमीनवालों ही कर सके! ऐसे कोई शब्द इधर-उधर है लेकिन वसीमसाहब का ये शे'र है। अनावश्यक वस्तु का विवेकपूर्ण परित्याग से समग्र स्वर्ग है। 'उत्तरकांड' का समग्र स्वर्ग है स्वयं की पहचान। 'सोहं अस्मि इति वृत्ति अखंड।' स्वयं की पहचान। वसीम साहब का शे'र है कि-

तुम एक किरदार हो अपनी हद में रहना।
हद से ज्यादा चलोगे तो कहानी से निकल जाओगे।

तुम तो एक पार्ट हो, किरदार हो, एक चरित्र हो। बाकी हद से ज्यादा चलोगे तो कहानियों से तुझे बाहर निकाल दिया जाएगा। अपनी पहचान, ये है समग्र स्वर्ग।

तो जो 'मानस-स्वर्ग' की चर्चा चल रही है मेरे भाई-बहन, उसको कई एंगल से हम देखें, उसको समझें। चाणक्य की स्मृति होती है। 'चाणक्यनीति' कभी पढ़ना; उसमें चाणक्य ने कहा है कि स्वर्ग में रहनेवाले के चार लक्षण होते हैं और नर्क में रहनेवाले के छः लक्षण होते हैं। 'स्वर्गस्थितानामहि जीव लोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे'। स्वर्ग से आया है या तो स्वर्ग में जानेवाला है उसके चार लक्षण। चाणक्य कहते हैं, पहला, 'दानप्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च।' स्वर्ग से कोई ऐसा जीव आपके परिवार में आ जाये तो नोट करना ये चार चीज़ हो तो समझना ये चेतना स्वर्ग से आई है; आसमां से ऊतारी गई है अथवा तो ये चार लक्षणवाला फिर स्वर्ग में जाएगा। मैंने पहले स्पष्टता की, मैं स्वर्गवादी नहीं हूं। इस जीव सृष्टि में स्वर्ग में रहनेवाले के दिल में चार लक्षण होते हैं, 'दानप्रसंगो।' जो बहुत दान करता हो, समझना कि ये आदमी स्वर्ग से आया है। कठिन बहुत है। दे, दे, दे बस। कोई देता-लुटाता जाये तो समझना, ये आदमी स्वर्ग का माली है। दूसरा लक्षण बताया, 'मधुरा च वाणी।' किसी के साथ भी बोलेगा तो मुस्कुराकर मधुर वाणी ही बोलेगा, समझना, स्वर्ग से आया है या तो प्रारब्ध पूरा करने के बाद स्वर्ग में जाएगा। भजनानंदी हो। देव का पूजन-भजन करता हो, स्मरण करता हो, भजनानंदी हो, समझना स्वर्ग से आया है या तो जाएगा। 'ब्राह्मणतर्पणं च।' ब्राह्मण का जो तर्पण करे। ब्राह्मण का अर्थ केवल जातिवाचक नहीं। वर्णवाचक की महिमा है, लेकिन ब्राह्मण का अर्थ है, जिन्होंने ब्रह्म को पा लिया है। अथवा तो ब्राह्मण का अर्थ है, विद्वान अथवा पंडित। अथवा ब्राह्मण का अर्थ है जो बुद्धपुरुष होने के लिए करीब-करीब तैयार हो गया है। ऐसे महापुरुष का तर्पण करना ये स्वर्ग के जीव का लक्षण है। तर्पण करना क्या, उसको जल चढ़ाते रहना, ऐसे महापुरुष के पास भीगी आंखों से बैठना।

दान देनेवाला, मुस्कुरानेवाला, भजन करनेवाला और हमसे जो श्रेष्ठ है उसका तर्पण करनेवाला। ये चार लक्षण याद रखना। अपनी आत्मा को पूछिए कि हम इसमें कहां है? फिर चाणक्य ने छः लक्षण बताये हैं, 'अत्यंत कोपः कटुता च वाणी दरिद्रता।' छः लक्षण। नरक से आनेवाला अथवा तो नरक में जानेवाला। जो फ्लाईट मिले या तो जो फ्लाईट से आया हो उसके छः लक्षण। अत्यंत कोप; अत्यंत क्रोध करनेवाले के लिए उसने कहा, उसको 'नर्क स्थितानाम्।' क्रोध बहुत बड़ी ऊर्जा है साहब! और हमारे जीवन को बहुत कृश करता है क्रोध। और 'कटुता च वाणी।' बिलकुल कटुवाणी। और दरिद्रता। घर में कुछ न हो, बच्चें भूखे रहते हो उसको भी नरक का दंड माना गया है। 'स्वजनेषु वैरम्।' चाणक्य कहता है, चौथा, अपने स्वजनों से वैर, अपनों से वैर; अपनों के साथ निरंतर वैर करना ये बताया। 'नीच प्रसंग कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नर्क स्थितानाम्।' नीच लोगों का संग नरक में रहनेवाले का पता है, परिचय है। तुलसीदासजी ने 'मानस' में व्याख्या करते हुए लिखा है-

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।

हल्के लोगों का संग करना नरक निवासी का लक्षण है। और आखिरी छठ्ठा सूत्र है, कुलहीनसेवा; जो कुलहीन है उसकी सेवा। उसके लिए दुआ करो, उसके लिए लाख तुम करोगे लेकिन परिणाम कुछ उलटा होगा। ये सब नरक में रहनेवाले, नरक से आये हुए अथवा तो नरक में जानेवालों के लक्षण चाणक्य महाराज ने बताये हैं। और व्यासपीठ ने तो नरक की व्याख्या करते हुए मात्र सूत्र कभी कहा था, निंदा ही नर्क है। बस, दूसरों की निंदा करना नर्क के सिवा कुछ नहीं है।

तो हमारी चर्चा चल रही है 'मानस-स्वर्ग' की। तो मूल में बात थी; दादा कहा करते थे, बेटे, अति संस्कार अच्छे नहीं है, ये जंजीर हो जाये। अति न हो। मेरे लिए बहुत बड़ा संबल था। अब मैं अपनी बाते कहूं तो ठीक नहीं लेकिन ये बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है। क्रिष्नमूर्ति बोले तो जयजयकार हो जाएगा लेकिन तलगाजरडा की नोंध तो सालों के बाद मैं ले रहा हूं। आप सोचिए। संस्कार अच्छी वस्तु है, संस्कारहीनता ये कोई बात नहीं लेकिन अत्यंत संस्कार बंधन है।

तो 'मानस-स्वर्ग' के बारे में कुछ जो बाते हैं आपके सामने रखी गई। थोड़ा आगे बढ़ें। कथा का क्रम लें इससे पहले कि टीना ने एक गज़ल रखी है।

तमाम उम्र मैं एक अजनबी के घर में रहा।
सफर न करते हुए भी किसी सफर में रहा।
वो और ही थे जिसने थी खबर सितारों की,
मेरा ये देश तो रोटी की ही खबर में रहा।

वसीम साहब के एक-दो शे'र चुना है। शायर कहता है-

दीया हूं और दीये का फ़र्ज पूरा कर रहा हूं।
अंधेरों से कहो रोके मैं उजाला कर रहा हूं।
किसी तूफ़ान की साज़िश से मेरा कुछ न बिगड़ेगा।
अब कश्ती नहीं, खुद पर भरोसा कर रहा हूं।

आज मुझे अपने पर भरोसा है, कश्ती पर नहीं। इसलिए तूफानों से कहो, मेरा कुछ बिगड़नेवाला नहीं।

आओ, अब आगे बढ़ें। तो बाप! गोस्वामीजी ने कथा के क्रम में श्री हनुमानजी की वंदना के बाद जो बड़ा प्रकरण अंकित किया है वो है परमात्मा के नाम की महिमा का; परमात्मा के नाम की वंदना का। गोस्वामीजी कहते हैं, कलियुग है इस काल में हम जैसे ओर कोई साधन नहीं कर पायेंगे। केवल हरिनाम सबसे श्रेष्ठ सर्वसुलभ। हम प्रवचन करते हैं, गाते हैं, आनंद करते हैं, रस ले लेते हैं; जरूर उसकी महिमा है लेकिन भूलियेगा मत, आखिर में अंततोगत्वा प्रभु का नाम। 'कारमुं एकांत ज्यारे तमने घेरी वळे त्यारे बेरखो लई लो।' नीतिन वडगामा का शब्द है। कहीं से लगे कि एकांत में रहा नहीं जा रहा, तन्हाई मार रही है तब हाथ में बेरखो। नीतिनभाई के कुछ पद है; सुंदर पद लिखे। कल मुझे मिल जायेंगे तो लेकर एकाद दो सुनाऊंगा। जो भी नाम आपको पसंद है; क्या फ़र्क पड़ता है? माँ का नाम लो, दुर्गा का नाम लो, शिव का नाम लो, कृष्ण का, बुद्ध का, महावीर का, इवन अल्लाह का भी नाम लो, क्या फ़र्क पड़ता है? मेरे श्रोताओं को तो खास, जब समय मिले, प्रभु का नाम दो मिनट। ये पढ़ते बच्चों के लिए भी मैं कहूं, आप युनिवर्सिटी में पढ़ते हैं। अपना वतन छोड़कर दूरदराज कोई स्विट्झरलेन्ड, कोई युरोप, कोई अमरिका, कोई कहां-कहां पढ़ते हैं। खूब पढ़ो, लेकिन बच्चों, जब सब काम पूरा हो जाये तब पांच मिनट हरि नाम लो। ये बहुत ऊर्जा देगा। एक बार प्रभु के नाम की जिसको स्वाभाविक आदत हो जाती है उसको हरिनाम कभी अकेले नहीं रहने देता। कोई साथ है, वो है हरिनाम। मेरे भाई-बहन, मेरे जो अनुभव है, मेरा जो आश्रय है हरिनाम का, वो आपसे कह रहा है कि आप पढ़ते हैं; दुनिया ऐसी है, सोबत-संग कब किसी को ग्रस ले, ऐसे समय में आपकी सुरक्षा है हरिनाम; उसीका सिमरन। तो बाप! गोस्वामीजी नाममहिमा को सिरमौर करते हुए कहते हैं-

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू।।

तो गोस्वामीजी कहते हैं कि रामनाम की महिमा स्वयं भगवान राम भी नहीं गा सकेंगे। तो प्रभुनाम की बड़ी महिमा है। सभी पहुंचे हुए महापुरुषों की एक राय है कि कलि में प्रधान साधन प्रभु का मंगलमय नाम है। बड़ा लंबा प्रकरण है नाम का। उसके बाद गोस्वामीजी अपनी कथा का एक आलेख प्रस्तुत करते हैं कि सोलह सौ इकतीस की विक्रम संवत् की रामनवमी के दिन मैंने ये 'रामचरितमानस' का अयोध्या में प्रकाशन किया। और उसके चार घाट बनाये। शरणागति के घाट पर बैठकर मैंने अपने मन को ये कथा सुनाना शुरू किया। और फिर शरणागति के द्वारा तुलसी हम सबको कर्म के घाट पर लिये चलते हैं जहां याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को कथा कहते हैं। ये सूत्र भी मुझे बड़ा प्यारा लगता है कि कर्म तो हम सबको करना ही पड़ेगा लेकिन शरणागति के भाव के साथ कर्म

करे। शरणागत का अर्थ ये नहीं कि हम निकम्मे हो जाये, बैठ जाये, प्रमादी हो जाये, कुछ काम न करे; ऐसा नहीं लेकिन शरणागत भाव से हम काम करे। तो प्रयाग में तो गंगा-यमुना-सरस्वती बहती है और निरंतर बहना ये कर्म का प्रतीक है। तो वहां तुलसी हमें लिए चलते हैं और वहां याज्ञवल्क्य के द्वारा कथा का आरंभ कराते हैं।

तो तुलसीजी शरणागति के घाट से कथा का आरंभ करके हमें कर्म में प्रवृत्त करने के लिए तीर्थराज प्रयाग लिये चलते हैं जहां प्रतिवर्ष कुंभ मेला होता है। एक बार के कुंभ के समापन में भरद्वाजजी ने परमविवेकी याज्ञवल्क्य के चरण पकड़ लिये और प्रार्थना की कि बाबा, मेरा एक प्रश्न है उनका समाधान करें। उसने याज्ञवल्क्य महाराज के चरण पकड़ लिये और कहा कि महाराज, मेरे मन में बहुत बड़ा संदेह है, संशय है और आपको वेदों के सभी सूत्र हस्तामलक है। आप मेरे मन का संदेह निवारण करे। ये राम कौन है? जिस राम का नाम शिव निरंतर जपते हैं; जिस राम की चर्चा उपनिषद करते हैं। तत्त्वत: ये रामतत्त्व क्या है? मुस्कुराकर बाबा बोले कि आप राम की प्रभुता से बिलकुल परिचित है। मूढ़ की तरह, अज्ञानी की तरह मुझे प्रश्न पूछते हैं, क्योंकि आप मेरे से रामकथा के गूढ़ तत्त्व को जानना चाहते हैं। इसलिए अज्ञानी की भांति पूछ रहे हैं। आप जैसे श्रोता मिले तो मैं जरूर आपको कथा सुनाऊंगा। प्रसन्नता व्यक्त करके याज्ञवल्क्य तीर्थराज प्रयाग के भरद्वाजजी के आश्रम के घाट पर भगवान राम की कथा का आरंभ करते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं, सबसे पहले दो पंक्ति में रामकथा की महिमा का गायन किया कि महाराज, रामकथा महामोहरूपी महिषासुर को मारने में कालिका है। मोह को तो राम मारते हैं लेकिन महामोह को रामकथा मारती है। ये बिलकुल सही है। मैं अपनी जीवनयात्रा में देख पा रहा हूं कि सालों से सुननेवाले कई लोग उसके क्रमश: मोह का बंधन ढीला होता जा रहा है। महामोह भगवद्कथा से पराजित होता है, अवश्य पराजित होता है। वरना मोह एक रक्तबीज राक्षस है। बार-बार प्रगट होता है। 'नष्टोमोहः।' तो कोई अर्जुन कह सकता है। हमारे लिए मुश्किल है। मोह धीरे-धीरे नष्ट होता है। जो लोगों की एक दलील रहती है कि लोग कथा सुनते हैं, क्या फायदा हुआ, क्या सुधार हुआ? बिलकुल बेबुनियाद बातें हैं। कितने प्रतिशत फ़र्क होता है ये कोई मैं सर्व करने नहीं जाऊं लेकिन फ़र्क बहुत पड़ता है। भगवद्कथा से आदमी के आग्रह छूटते हैं। भगवद्कथा से आदमी के अहंकार की मात्रा कम होती है।

अभी गुरुपूर्णिमा के अवसर पर जहां सीतेशरणजी की कथा थी। तो जिस अमरिकन परिवार ने घर खाली कर दिया था रहने के लिए। ये पूरी कथा सुन रही थी। अब मेरी भाषा कहां समझे? हिन्दी कैसे समझे? लेकिन मैंने मार्क किया कि चार घंटे बैठी रहती थी। और जब मैं निकला तो उसने कहा कि बापू, हम ये यज्ञकुंड हटायेंगे नहीं। और यदि ये झूला हमको रखने दे तो ये झूला हम यहां रखें। हम हमारे भगवान जिसस की प्रार्थना यहां बैठे करेंगे। तो मुझे बताया उसने लिखा है कि मेरी जुवान बेटी; मैं तो रोज कथा में आती लेकिन वो तो एक दिन आई थी। और बापू, खबर नहीं, क्या हुआ वो रोज आपके झूले के वहां बिना बिछाये सोती रहती है। और जब हम पूछते हैं कि बेटी, तू क्यों चुप हो गई? बोले, खबर नहीं, मुझे यहां कुछ अच्छा लग रहा है। कथा काम करती है।

आभमां के दरियामां तो एक पण केडी नथी,
अर्थ एनो ए नथी, कोईए सफर खेडी नथी।
-राजेश व्यास मिस्कीन'

आकाश में कोई मार्ग नहीं है, लेकिन लोग गगनयात्रा तो करते हैं। मेरे कहने का मतलब कथा असर करती है। और कोई असर हो कि ना हो, कथा सुनने में आपको रस पड़ता है ये भी एक असर है। छोटे-छोटे ये जो बच्चें हैं, बेचारे जागृतिपूर्वक कथा सुने, वरना मेरे सूत्र कितने समझ पायेंगे? एक तो भाषा का प्रोब्लेम है। और कुछ गहन सिद्धांत आ जाता है तो कैसे वो समझे? फिर भी सालों से ये बच्चें लोग भी कथा सुनते हैं। इसका मतलब कुछ बातें तो हो रही है।

तो कथा क्रमश: मोह को कम करती है; बंधनों को ढीला करती है; कुछ न कुछ नई दृष्टि प्रदान करती है। तो दो पंक्ति में रामकथा की अतुलनीय महिमा का गोस्वामीजी ने गायन किया। रामतत्त्व पूछा गया, लेकिन रामकथा कहने के बदले भगवान याज्ञवल्क्य शिवकथा सुनाते हैं। यहां दो वस्तु है, एक तो शिव और राम की एकता सिद्ध करनी है। दूसरी, आप पूछो उसीका ही जवाब देने की बाध्यता वक्ता की नहीं है। वक्ता कोई भी विषय लेकर बोलेगा। तो यहां पूछा गया रामकथा और शुरू की शिवकथा। यहां वक्ता के स्वतंत्रता की महिमा

का गायन किया। यद्यपि वो विषय पकड़ ही ले लेकिन पहले शिवकथा से कथा का आरंभ किया। भगवान शिव का चरित्र आरंभ करते हैं।

एक बार त्रेतायुग में शिव अपनी धर्मपत्नी सती को लेकर कथा सुनने हेतु कुंभज ऋषि के आश्रम में आये। स्वागत किया; पूजा की। तो शिव ने बड़ा सुंदर अर्थ निकाला कि मैं कथा सुनने के लिए महात्मा के पास आया। नियम और कर्तव्य तो ये कहता है कि मैं उसकी पूजा करूं लेकिन धन्य है, ये मेरी पूजा कर रहे हैं! सती ने उसका गलत अर्थ कर दिया। सती ने ऐसा सोच लिया कि जो अभी से हमारा पैर पकड़ रहा है, पूजा कर रहा है, क्या खाक कथा सुनायेगा! किसी का वेश, किसी की भाषा, किसी का व्यवहार, किसी की शालीनता, किसी की उदारता उसको देखकर गलत अर्थ मत करना कि वो तुमसे छोटा है और पैर छू रहा है। ये उसका बड़प्पन है कि तुम्हें वो आदर दे रहा है। लेकिन सती तो बौद्धिक दक्ष की बेटी है, बुद्धि के तरंग में सोचा कि क्या कथा सुने जिसका जन्म घडे में से हुआ है! अवसर चुक गई सती।

कुंभज ऋषि ने रामकथा का श्रवण करवाया। सुख मानकर शिव ने कथा सुनी। जो स्वयं रामकथा के सृजाता है, स्वयं रामकथा के आदि परमवक्ता है, लेकिन वो आज परमसुख मानकर कथा का श्रवण कर रहे हैं। सती ने कथा सुनी कि नहीं वो लिखा नहीं, बैठी जरूर। उसका मतलब ये है कि कथा में जाये, कथा में बैठे, कथा कोई प्रेम से सुनाये तो भी सुनी नहीं जाती यदि प्रारब्ध में न हो, तो सती चुक गई अवसर। शिव ने सुख से कथा श्रवण की। और कथा के बदले में कुछ तो देना चाहिए। तो शिव ने ये परंपरा बताई कि महाराज, मैं आपके चरणों में क्या रखूं? कुछ तो आप ग्रहण करे। आपका व्रत हो तो आप कुछ लेते न हो और मैं कुछ दूं तो आप संकोच में पड़ जाये। आपका व्रतभंग हो वो मुझे भी पसंद न पड़े। लेकिन आप कुछ कहे तो मैं आपकी सेवा करूं। अब कुंभज ऋषि ने कहा, महाराज, मैंने सुना है, आप भक्ति के दाता है। आप मुझे रामभक्ति दो। भक्ति के बारे में जिज्ञासा की है। अधिकारी देखकर भगवान की भक्ति का दान किया है।

भगवान कैलास के लिए सती के साथ प्रस्थान करते हैं। शिव-सती निकलते हैं। दंडकवन का रास्ता है। वो त्रेतायुग का राम अवतार वर्तमान था। प्रभु की ललित नरलीला थी। सीता का अपहरण हो चुका था। भगवान राम सीता के वियोग में रोते हुए निकले हैं। तो भगवान को रुदन करते देखकर सती के मन में संदेह हुआ, ये कौन है? क्योंकि शिव ने 'सच्चिदानंद' कहकर राम को दूर से प्रणाम कर लिया। शिव ने समझाया। मानी नहीं और राम की परीक्षा करने जाती है। पकड़ी गई। विफल हुई। सती शिव के पास झूठ बोलती है। भगवान शिव सती का त्याग कर देते हैं। शिवजी सती को छोड़कर आंगन में बैठ गये। सती बहुत दु:खी हुई है। सत्तासी हजार साल के बाद भगवान शिव जागे। 'राम-राम' बोलने लगे। सती शरण में आई। सती की पीड़ा देखकर आशुतोष शिव करुणा अवतार जो शिव है, सोचते हैं कि सती को बहुत पीड़ा है, मैंने त्याग किया; इसीलिए वो रसप्रद कथा सुनाने लगते हैं। और उसी समय दक्ष प्रजापति के यहां यज्ञ होता है। सती के पिता के घर देवगण विमान लेकर आते हैं। सती प्रश्न पूछती है कि ये कहां जा रहे हैं? भगवान शिव मना करते हैं कि छोड़ो। लेकिन सती मानी नहीं और फिर सती जिद्द करके पिता के यज्ञ में जाती है। शिव का अपमान दक्षयज्ञ में देखकर सती यज्ञकुंड में देहत्याग कर देती है। जलते हुए सती ने परमात्मा से मांगा, जनम-जनम मुझे नारी का ही जन्म मिले और शिव ही मुझे पति के रूप में प्राप्त हो। इसलिए सती का दूसरा जन्म पार्वती के रूप में हुआ; नगाधिराज हिमालय के घर पार्वती का प्रागट्य हुआ। उत्सव हुआ। और फिर नारदजी आते हैं; नामकरण करते हैं। ये सब बातें संक्षेप में मूल प्रसंग को गाते हुए आगे बढ़ायेंगे। आज की कथा को यहां विराम दूं।

'मानस' के सातों कांड के सात भिन्न-भिन्न स्वर्ग है, जो अल्प नहीं है, समग्र है। 'बालकांड' का स्वर्ग है निर्वैर मनःस्थिति। किसी के प्रति हमारे दिल में कभी भी वैर प्रकट न हो ये है 'बालकांड' का स्वर्ग। 'अयोध्याकांड' का स्वर्ग है जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का सहर्ष स्वीकार। 'अरण्यकांड' का स्वर्ग है तपस्या। 'किष्किन्धाकांड' का स्वर्ग है पतंजलि का सूत्र लेकर कहूं तो मैत्री। वियोग में जीना ये 'सुन्दरकांड' का स्वर्ग है। 'लंकाकांड' का स्वर्ग है क्रमशः धीरे-धीरे अनावश्यक वस्तुओं का त्याग। और 'उत्तरकांड' का समग्र स्वर्ग है स्वयं की पहचान।

मानस
स्वर्ग
3

सत्य, प्रेम, करुणा स्वर्ग है

'मानस-स्वर्ग', जिसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में हो रही है। कुछ आगे बढ़ें। भगवान राम लंका विजय के बाद अवध पधारे और रामराज्य की स्थापना हुई। उसके पश्चात् प्रभु ने एक बार सभा बुलाई अयोध्या के राजदरबार में पूरी सभा इकठ्ठी हुई। उस दृश्य को जरा देखते हम विषय प्रवेश करें। एक बार रघुनाथ ने बुलावा भेजा। मुनिगण, द्विजगण, सज्जन, गुरुजन, स्वयं भगवान सब आये। कितना बड़ा बुलावा है? ठाकुर के घर का निमंत्रण है। सब आये और यथास्थान सब बैठे। भगवान वचन बोले जो मुक्तिवाचक वचन थे; मधुर वचन बोले-

सुनहु सकल पुरजन मम बानी।
कहउं न कछु ममता उर आनी।।

भगवान कहते हैं, मेरे पुरजन, मेरी बानी सुनिए। और किसी श्रेष्ठ की बानी सुनने में दो वस्तु का ध्यान रखना। एक, भय छोड़कर सुनो और दूसरा, संकोच छोड़कर सुनना। एक माँ बोले तो बच्चे को काहे का भय? एक माँ बोले तो बच्चे को काहे का संकोच? वो सामने बैठकर भी सुने; बगल में बैठकर भी सुने; इधर भी बैठकर बच्चा सुने; गोद में भी आकर सुने। कंधे पर चढ़कर भी सुने। मेरे श्रोताओं को में कहूं, कहीं भी श्रवण करो तो ये दो ओर सूत्र है, भय छोड़कर और संकोच छोड़कर। कथा में आये हो तो काहे की शरम? काहे की लज्जा? कथा में आये हो तो कीर्तन में काहे का संकोच? कथा में आये हो तो ताली बजाने में काहे का संकोच? काहे का भय?

भगवान कहते हैं, मैं मेरी बानी ममता के कारण नहीं बोल रहा हूं। मेरी बानी पर मेरी ममता नहीं है, लेकिन आप पर मेरी ममता है। जो सालों से मैं बोल रहा हूं वो मूल में रघुनाथ का कथन है। मेरे राम बिलकुल स्थितिस्थापक है। मैं जो बोल रहा हूं वो ममता से मेरे वचन स्वीकार हो न हो कोई चिंता नहीं। इतना फ्रिडम जो राम दे रहे हैं इस छोटे से प्रसंग में। प्लीज़, उसको ध्यान से अंतरमन में प्रस्थापित करें। मैं मेरे विचार प्रस्तुत करूं, लेकिन मेरे विचार पर मेरी ममता नहीं होनी चाहिए। वरना मैं जबरदस्ती आप पर डालूंगा। मेरी ममता आप पर बनी रहनी चाहिए। तो भगवान कहते हैं कि मैं कोई ममता में नहीं बोल रहा हूं। फिर आगे बोले हैं-

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई।
सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।

भगवान राम जैसा कोई प्रवक्ता नहीं है। विश्व का सर्वश्रेष्ठ वक्ता राघवेन्द्र है। राम जैसा कोई वक्ता नहीं। कृष्ण जैसा कोई वक्ता नहीं। शिव जैसा कोई वक्ता नहीं।

वक्ता तीन प्रकार से बोलते हैं। एक तो सार्वभौम बोलते हैं, जैसे सभा में बोला जाता है। सभा में बोलनेवाले वक्ता को सबकी रुचि का सहज पता चलता है। और सामूहिक जब बोलेगा तब उसकी वाणी इतनी प्रासादिक होती है कि सबको ऐसा लगेगा कि हमारे लिए ही बोला जा रहा है। होता है सार्वभौम कि एक बच्चे को भी आनंद आये; शिक्षक को भी आनंद आये; पति-पत्नी को भी आनंद आये, बूढों को, बुज़ुर्ग को सबको आनंद आये, छोटे-बड़े सब को। एक वक्ता बोलते हैं, कुछ चंद लोगों के बीच इर्द-गिर्द में कुछ बैठे हैं और बोला जाता है; वहां एक गूफ्तगू होती है; एक संवाद होता है जिसको मैं मुक्त सत्संग कहता हूं। और तीसरा, कोई न हो; नदी के तट पर वक्ता बैठा है; वृक्ष की छांव में वक्ता बैठा है; आकाश की ओर देखता है; पहाड़ की ओर देखता है। प्रकृति के साथ संवाद करे; मुक्ति से करे; ये एक प्रकार का वक्ता है। शायद तलगाजरडा ने तीनों किया। जब मैं 'मानस' पढ़ रहा था दादा के पास, मुझे कौन सुनता था? लेकिन मौका मिला, चल दिया रेलवेलाईन पर महुवा टु सावरकुंडला, जो पहला गांव आता है, अमृत वेल तक मैं पैदल जाता था साहब! और उसी समय मैं बबूल को, बादलों को चौपाई सुनाता था; रेलवेलाईन को सुनाता था; पटरी को सुनाता था। कभी ऐसे कोई गाय-भेंस चर रही है वहां शुरू कर दिया! आप तो बाद में आये यार! बहुत देर से आये! कभी जो हनुमानजी को

चढ़ानेवाले आंकडे की माला, इन आंकडों के बीच में मैंने 'किष्किन्धाकांड' गाया। फिर कुछ लोग के बीच मैं गाने लगा।

तो बाप! मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं कि भगवान राम कहते हैं कि इसमें कोई अनीति नहीं; मर्यादा टूटेगी नहीं। मैं जो भी कहूंगा नीति के अनुकूल होगा, लेकिन मैं आप पर प्रभाव डालने के लिए नहीं बोलनेवाला हूं। वक्ता को ये प्रभाव डालने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। मेरी भी कोई प्रभुता नहीं। मैं भी कोई आपको वाक्प्रभाव में खिंचना नहीं चाहता। बाकी कोई भी वक्ता चाहेगा, स्वाभाविक है। लेकिन रामजी वक्ता को उपदेश देते हैं कि मैं जो बोलूं वो तुम करना। लेकिन जितना कहा, सब नहीं करना; तुम्हें जो अच्छा लगा हो वो करना। पहले फ्रिडम। और फ्रिडम स्वर्ग है। मैं नहीं कहता; कविवर टागोर कहते हैं, स्वतंत्रता का स्वर्ग। जो मैं गाता हूं उसी स्वतंत्रता के स्वर्ग में हे मेरे प्रभु, लिये चल। भगवान राम ने स्वतंत्रता प्रदान की। आप मुझे सुनो और जो मैं कहूं उसमें से आपको जो अच्छा लगे, आपको छू जाये, आपके अनुभवों को सपोर्ट करे, आपकी अनुभूति से जिसका मेल हो जाये ऐसा आप करना। और फिर भी बोलने में जो मेरे से कुछ अनीति हो जाये तो मुझे बीच में रोक देना, भगवान, माफ़ करियेगा, ये निवेदन आपका ठीक नहीं है।

जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।

यदि मेरे मुख से कोई अनीति वचन निकला तो भय छोड़कर आप मुझे बीच में रोक देना। कोई वक्ता कह सकता है? वो भी शीर्षस्थ वक्ता।

यहां कुछ स्वर्ग की व्याख्याएं है इसलिए मैं प्रसंग उठा लेता हूं। तो एक व्याख्या हो गई स्वर्ग की, स्वतंत्रता स्वर्ग है, स्वाधीनता स्वर्ग है। टागोर ने फ्रिडम को हेवन कहा है। दूसरा स्वर्ग का भाष्य हो रहा है, ' तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।' निर्भयता स्वर्ग है, कोई भी भय न हो।

तो भगवान कहते हैं, भयमुक्त होकर मुझे आप रोकना। तो एक तो स्वतंत्रता ये स्वर्ग है। दूसरा स्वर्ग है यहां रघुनाथ की बोली में निर्भयता। आपके पास कितने ही सुख हो लेकिन आप निर्भय न हो तो स्वर्ग नहीं, नर्क है। निर्भयता ये स्वर्ग है। ये नये-नये स्वर्ग है। गिन लीजिए स्वर्ग। स्वतंत्रता स्वर्ग है। निर्भयता स्वर्ग है। निर्भयता के लिए अनंत श्री विभूषित महामंडलेश्वर, कैलास आश्रम, ऋषिकेश के बड़े महाराज विष्णु देवानंदजी महाराज का 'वेदांतरत्नाकर' का एक श्लोक मैं लिख कर आया हूं। उसमें आपने कहा है, निर्भयता स्वर्ग है। दादाजी का मंत्रमय श्लोक, जिसमें कहा है कि ये ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक; और कठिन से कठिन संस्कृत का उपयोग दादा करते थे।

अलं फले नेह सुपरीय संपदा कृतं विश्नेचेही।
पद विक्षयालीने न विष्णु दिष्णम्।

दादा ने अपना नाम डाल दिया। धीरे से कर्ताभाव छोड़कर अपना स्मरण करा दिया।

न च भर्ग भूमिका मथाद्रीये ब्रह्म भवानी निर्भयं। ये श्लोक का जो भाष्य दादाजी ने लिखा है उसमें 'वेदांतरत्नाकर' के अंतिम श्लोकों में ये है; मानो दादाजी कामना कर रहे हैं कि स्वर्ग के ऊपर का ब्रह्मलोक भी मुझे नहीं चाहिए। तो आखिर में कहते हैं, हमें वो स्थान चाहिए जो हमें निर्भय करे, अभय रखे। तो निर्भयता स्वर्ग है; स्वतंत्रता स्वर्ग है। मन की शांति स्वर्ग है। सीधी-सादी बात है। घर में कितने सुख-सुविधा हो, साधन हो लेकिन मन की शांति नहीं तो कुछ भी नहीं। मन की शांति स्वर्ग है। भवन में कंकास न हो वो स्वर्ग है। परिवार में कंकास न हो वो स्वर्ग है। और तन में रोग न हो वो स्वर्ग है। मन में शांति हो, तन में रोग न हो, भवन में कलह न हो वो स्वर्ग है। तो ऐसे कई स्वर्ग पैदा करने पड़ेंगे। और शास्त्रों में लिखा है कि 'ॐ भूर्भुवः स्वः।' ये तीनों जिसको त्रिलोक्य कहते हैं। स्वर्ग का एक नाम है त्रिलोक्य। लेकिन मैं कहूंगा कि सत्य, प्रेम, करुणा स्वर्ग है। इसके अलावा कहां स्वर्ग है?

तो पुरवासियों को संबोधन करते हुए ठाकुर बोले कि बीच में मुझे रोक देना, भय मत रखना। और कहते हैं, 'बड़े भाग मानुष तनु पावा।' हे मेरे पुरवासी, बहुत बड़े भाग्य के कारण हमें मनुष्यदेह मिला है ये सुरदुर्लभ है। अब 'सुरलोक' शब्द है उसका अर्थ भी स्वर्ग होता है। सूर्य से ध्रुव तारा उसके बीच में चौदह लाख योजन का शास्त्रीय डिस्टन्स; विज्ञान करे न करे छोड़ दो लेकिन हमारे शास्त्रों में जो डिस्टन्स बताया सूर्य से लेकर ध्रुव तारा उसके बीच चौदह लाख योजन का डिस्टन्स है। ये क्षेत्रफल है स्वर्ग का। जैसे स्विट्झरलेन्ड का एक क्षेत्रफल; भारत का एक क्षेत्रफल जिसमें हमारा तिबेट भी

आ जाता है; सब जो-जो कब्जा किया है वो भी आ जाता है। अखंड भारत बिलग माप है। मेरा कैसे छोडूं यार! मैं भारतीय हूं। मैं कैसे भूल जाऊं? मैं हूं हिन्दुस्तानी। में कैसे भूल जाऊं? कोई रोक सकता है यात्रा को लेकिन हमारी मन की यात्रा को कौन माय का लाल रोक सकता है? मन तो कैलास पहुंच जाता है। तो ये अपनी अस्मिता। बच्चों, याद रखना, दुनिया में कहीं भी रहो, भारत की जो अस्मिता है वो बनाये रखो। तो सूर्य से ध्रुव तारा तक का जो क्षेत्रफल है उसको कहते हैं स्वर्गलोक। और स्वर्गलोक के राजा का नाम क्या है? आप कोई बतायेगा? इन्द्र। सही जवाब है।

स्वर्गलोक का राजा का नाम है इन्द्र। और इस राष्ट्र का द्वारपाल का नाम है ऐरावत। प्रधान द्वारपाल ऐरावत हाथी, जो समुद्रमंथन से निकाला गया। उसी स्वर्ग में एक बाग है जहां सब घूमने जाते हैं। उसका नाम है नंदनबाग। वहां लोग ज्यूस नहीं पीते; दो ही चीज पीते हैं, एक अमृत और दूसरी सुरा-शराब, जो इन्द्रवाला स्वर्ग है। अमृत पीने के बाद आदमी मरता नहीं। तो स्वर्ग से मर्त्यलोक में फिर पुण्य खत्म होने के बाद फिर नीचे आ जाएगा। और अमृत पिये तो अमर हो जाये। तो ये लोग अमृत तो पीते हैं; रोज ये ही पीते हैं। मेरा तर्क समझिए कि अमृत जो निरंतर पी रहे हैं स्वर्ग में तो ये लोग फिर नीचे क्यों गिरते हैं? इसका मतलब कि शराब भी पीते हैं। शराब का दूषण अमरता में विघ्न कर देता है, वैसे रामकथा का अमृत पीने के बाद आप भी कुछ इधर-उधर का पीयोगे तो जितना परिणाम आना होगा उतना न भी आये; यही मंतव्य है। मेरे से किसीको कोई दबाव नहीं डालना कि तुम ये छोड़ दो, ये छोड़ दो। लेकिन ध्यान तो रखे। और खास मेरा लक्ष्य ये छोटे भाई-बहन जो मेरी कथा में इतनी रुचि ले रहे हैं; उसके माँ-बाप संकट में हो तो उनके बच्चें केवल एक ही मेसेज करते हैं, क्यों चिंता करते हो, बापू है ना! ये बच्चे ही इतना भरोसा रखकर बैठे हैं व्यासपीठ पर। इसलिए मैं सबको कहता हूं कि बेटा, ध्यान रखना; कंपनी से, सोबत से कोई गलत व्यसन न आ जाये, ध्यान रखना। बाकी आनंद करो, घूमो, फिरो, मौज करो।

तो स्वर्ग का राजा है इन्द्र; राणी है सची। थोडोक अवळो दीकरो छे जयंत! द्वारपाल है ऐरावत; गुरु है बृहस्पति। तो मेरे भाई-बहन, 'अमर कोश' में स्वर्ग के कितने लक्षण बताये। ये सुना दूं मैं आपको।

स्वर्ग नाक त्रिदिव त्रिदशालयः सुरलोको दिव्योदिवो दैव्ये स्त्रीयां क्लीवेट त्रिविष्टं।

इतने स्वर्ग के पर्याय 'अमरकोश' संस्कृत का बहुत बड़ा शब्द कोश में से। गुजराती में 'भगवद्गोमंडल' उसमें स्वर्ग का अर्थ है, देवताओं के रहने की जगह; देवलोक आदि-आदि। हमारा जो कंठ होता है ना, संस्कृत में उसको स्वर्गद्वार कहते हैं। इसलिए कंठ को बहुत ध्यान रखना चाहिए। उसी स्वर्गद्वार से सुंदर सुर निकलते हैं, स्वर निकलता है, संगीत निकलता है, मधुर वाणी निकलती है। शहद घोल दे; अमृत घोल दे। इसलिए कंठ को स्वर्गद्वार कहा है। तो स्वर्ग के बहुत पर्याय है। स्वर्ग मानी नाक। गोस्वामीजी भी 'नाक' शब्द का प्रयोग करते हैं। त्रिदिव; जो मैंने कहा ना कि 'त्रिलोक्य भूर्भूवः स्वः।' ये जो त्रैलोक्य है उसको व्यासपीठ ने सत्य-प्रेम-करुणा कह दिया; तो ये स्वर्ग का नाम है। 'त्रिदशालयः।' ये त्रिकोण है; इसके तीन कोने हैं। और उसी को भी एक स्वर्ग कहते हैं। 'सुरलोको'; देवताओं का रहने का स्थान। बहुत अच्छी व्याख्या 'अमरकोश' ने की। और भारत ही कर सकता है। जिन लोगों ने पहले न सुना हो, प्लीज़, सुन ले। हमारे 'अमरकोश' में लिखा है, स्त्री स्वर्ग है। अब जो लोग बिना शास्त्र पढ़े कहते हैं कि स्त्री का अपमान होता है भारत में! तुम्हारे धर्म को पहचानो! तुमने स्त्रीयों की क्या दशा की है! भारत तो जो स्त्री को स्वर्ग बोल दे। मेरे देश की माँ-बेटी, विश्व की माँ-बेटी स्वर्ग है। और बिलकुल जिसको जीना आये तो स्त्री घर को स्वर्ग बना देती है; ये स्वर्ग है। कौन कहता है, स्त्री नर्क का द्वार है? मेरे ऋषिमुनियों को पूछो। व्यासपीठों को पूछो; खडपीठों को न पूछो! राजपीठों को भी न पूछो! एक माँ बैठी है, बच्चा उसकी गोद में खो जाता है, क्या ये स्वर्ग नहीं है? एक बहन अपने भाई के हाथ में टीका करके राखी बांधती हो, क्या ये पल, ये लम्हें स्वर्ग नहीं है? एक पति-पत्नी दोनों अत्यंत प्रेम, आदर और प्यार से जीये तो क्या स्वर्ग नहीं है? स्त्री स्वर्ग है।

सुकामां सुवाडी भीने पोढी पोते,
पीडा पामुं पंडे तजे स्वाद तो ते;
मने सुख माटे कटु कोण खातुं,
महा हेतवाळी दयाळी ज मा तुं।

माँ स्वर्ग है। तो स्वर्ग का एक अर्थ है आकाश। स्वर्ग का एक आखिर अर्थ परमेश्वर। स्वर्ग मानी परमात्मा। ये स्वल्प स्वर्गवाला नहीं; वो स्वर्ग जो अखिल है, तमाम है वो परमात्मा, परमेश्वर। स्वर्ग की ये व्याख्या ग्रंथों ने बताई है। तो भगवान राम कहते हैं, देवताओं का लोक स्वर्ग है लेकिन मृत्युलोक पर है; मेरे पुरवासी मुनष्य रहते हैं हम लोग रहते हैं। और ये मनुष्यत्व देवताओं को भी दुर्लभ है, भले वो सुरलोक में रहते हो। 'सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।' हमारा मानव जीवन सुर दुर्लभ है। और कहा, 'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।' ये कोई भी साधन हम इस शरीर से करते हैं। और मुक्ति का तो द्वार है मनुष्यजीवन। उसके बाद पंक्ति आती है जो पंक्ति हमने 'मानस-स्वर्ग' के लिए ली है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।

आपको कहीं भी किसी भी क्षण में इच्छा हो जाये कि मैं किसी को कुछ दे दूं वो लम्हा स्वर्ग है। प्लीज़, मार्क इट। ये दुनिया के परिभ्रमण से मैंने देखा है कि लोग इतने कृपण होते हैं! लोग आजकल कहते हैं, कुपात्र को नहीं देना। कुछ वस्तु में कुपात्रता मत देखा। भूखे को रोटी देते समय कभी ये मत देखना कि ये कुपात्र है या सुपात्र। उसकी भूख ही पात्रता है। ठंडी में कोई ठिठुर रहा है, उसकी नग्न-निर्वस्त्र काया जो ठंडी में वो ही उसकी पात्रता है। शराब पीकर कांप रहा है वो मत देखो; उसको वस्त्र दो। एक मरीज़ एक बीमार आदमी मरने पड़ा है, चाहे लाख गुनाह किये हो लेकिन अब उसको औषधि की जरूरत है तो दो। वरना हमारे यहां कहा है कि कुपात्र को दान न दिया जाये। ये पद लिखे हुए भी कई साल हो गये, सुधार होना चाहिए। जिसस का वाक्य है, क्राईस्ट का, देगा उसको ओर दिया जाएगा और जो नहीं देगा उसके पास जो है वो छिन लिया जाएगा। तो देने की क्षण जो है वो स्वर्ग है। दो। लेकिन देने की बात आती है तो हम सब चतुराई करते हैं, होशियारी करते स्वार्थी हो जाते हैं! स्वर्ग आनेवाला ही था निकट; आगे कदम उठाते तो स्वर्ग में था; उसी क्षण में फिर हम नर्क की ओर लौट जाते हैं, गिर जाते हैं! बाप! देना सीखिये। मैं ये नहीं कह रहा कि सब लूटा दो लेकिन कम से कम दसवां भाग तो दो। और कैसे भी, प्रतिष्ठा के लिए दो। तुलसीदासजी

ने कहा, 'येन केन बिधि', प्रतिष्ठा के लिए दो; माँ-बाप के, पूर्वजों के नाम रखने के लिए दो, कोई बात नहीं। थोड़े अहंकार के साथ दो, कोई बात नहीं। मुझे कई लोग कहते हैं कि बापू, हम देते हैं ना तो एक महीने में डबल हो जाता है!

धर्म के चार चरण है। सत्य, तप, पवित्रता और दान। इनमें से एक पैर को भी नुक्सान होता है तो भुगतान ओर तीनों को भी भरना पड़ता है। ये नियम है लेकिन कलियुग में एक राहत दे दी गई है कि दानवाला पैर उसको कहा कि कुछ भी हो, जख्मी हो, अच्छा हो, बुरा हो कैसे भी हो 'येन केन बिधि दीन ने दान किये कल्याण।' तो देने का जो पल है वो लम्हा है स्वर्ग। तो भगवान राम कहते हैं कि हे प्रजाजनों, इस शरीर का फल विषय नहीं हे, क्योंकि स्वर्ग स्वल्प है, छोटा है, अल्प है, पूरा नहीं है।

मुझे बड़े महाराज विष्णुदादा याद आ रहे हैं। दादाजी का एक सूत्र 'वेदांत रत्नाकर' में है कि भोजन करने से शक्ति मिलती है। केवल स्वाद मिले और शक्ति न मिले तो भोजन बेकार है। स्वाद मिले लेकिन शक्ति न मिले तो क्या करें? भोजन करने से शक्ति मिलनी चाहिए। केवल स्वाद की पुष्टि हो और शक्ति न हो तो भोजन नहीं करना चाहिए। वैसे दु:ख की निवृत्ति ही पर्याप्त नहीं है, आनंद मिलना चाहिए। हम कहते हैं, दु:ख जाये। दु:ख तो चले जायेंगे यार! अभी किसी को दु:ख है? अब चार घंटे किसी को नहीं है। आठ दिन यहां है तब तक कोई दु:ख नहीं है। बहुत क्रांतिकारी वचन है दादाजी का, विष्णु देवानंदगिरि बापू का, जो दादाजी मेरे गुरु है उसके छोटे भाई पूर्वाश्रम में; वो कहते हैं, दु:ख की निवृत्ति ही जीवन का पर्याप्त लक्ष्य नहीं है। आदमी को आनंद मिलना चाहिए। दु:ख तो कई जगह ले जायेंगे लेकिन आनंद का क्या? वैसे टेस्ट मिले ये पर्याप्त नहीं, शक्ति भी मिलनी चाहिए। स्वर्ग को ईंग्लिश में हेवन कहते हैं; पेरेडाईज़ कहते हैं ना, पेरेडाईज़ मिन्स स्वर्ग। अदम का बाग उर्दू में स्वर्ग को कहते हैं। लेकिन मुझे कहना चाहिए तो इतना ही कहूं कि जिस स्थान में विशुद्ध आनंद की प्राप्ति हो वो ही स्वर्ग है। जहां जाओ आनंद मिले, प्रसन्नता मिले, चित्त भरा रहे, आंख डब-डबाई रहे, हरि का सुमिरन होता रहे। आनंद देनेवाली व्यक्ति आनंद देनेवाली जगह, आनंद देनेवाला समय, आनंद देनेवाला संवाद, आनंद देनेवाला कोई भी पदार्थ स्वर्ग है। ऐसे स्वर्ग की चर्चा करते हुए गोस्वामीजी भगवान राम के मुख से ये पंक्ति बुलवा गये। और आगे की पंक्ति भी भगवान राम जब भक्ति की चर्चा करने लगे तब भगवान के मुख से दूसरी पंक्ति-

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।
तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।

तो 'मानस-स्वर्ग' की हम मिलकर के कुछ संवाद-चर्चा कर रहे हैं। संतों से सुनी हुई बातें, अनुभव में आई बातें, शास्त्रों में कही गई बातें उसका आपके सामने ये संवाद चल रहा है। आज रामजन्म करवाना है। दक्षकन्या सती दूसरे जन्म में पर्वत के घर पार्वती के रूप में प्रगट हुई। नारदजी ने नामकरण किया। माता-पिता के पूछने पर नारदजी ने संकेत के रूप में कहा कि इस बेटी को ऐसा पति मिलेगा। पार्वती सुनकर समझ गई कि नारदजी ने जो-जो लक्षण बताये वो महादेव के ही तो है। लेकिन नारदजी ने कहा, तुम्हारी बेटी तप करे तो शिवप्राप्ति हो। पार्वती तप करने जाती है। तप के फलस्वरूप आकाशवाणी से उसको वरदान दिया गया कि आपका मनोरथपूर्ण हो रहा है। पिता बुलाये तब घर चली जाना, शिव की प्राप्ति होगी।

यहां शिव पार्वती के वियोग में घूमते रहे। एक जगह प्रभु के ध्यान में बैठ गए। भगवान रामभद्र प्रगट होते हैं और शिव से कहते हैं, महाराज, जिस सती का आपने त्याग किया उसने दूसरा जनम लिया तपस्या करके। मैं आपसे एक बात मांगने आया हूं, शिवजी, हिमालय के घर से निमंत्रण आये तो आप पार्वती का स्वीकार करे। शुरूआत में जरा वो कर रहे हैं, लेकिन बाद में वो हां कह देते हैं। सप्तऋषि प्रेमपरीक्षा करते हैं। भगवान शिव पार्वती के प्रेम की गाथा सुनकर फिर समाधिस्थ हो जाते हैं। देवताओं ने मिलकर समाधि भंग किया और भगवान शिव ब्याहने के लिए तैयार हुए। नंदी पर बाबा सवार है। त्रिशूल-डमरू धारण किये। पूरी भूत-प्रेतों की जमात उसके साथ है। हिमाचल प्रदेश पहुंचते हैं। शिव के इस रुद्र रूप को देखकर सब डर गये और बेहोश हो गये! परिछन करते समय मैनाजी भी मूर्छित हो जाती है और अंत:पुर में जाकर अपनी वेदना प्रकट करती

है। सप्तऋषि नारदजी और हिमाचल निजमंदिर में आये। उसी समय नारद ने हिमालय को कहा, राजन्, महारानी मैना, आप इसको बेटी समझते हैं ये आपका सद्भाग्य है कि आपके घर आई लेकिन ये तुम्हारी भी माँ है। मतलब ये जगदंबा पार्वती है। सब पार्वती को प्रणाम करने लगे। हमारे द्वार पर शिवतत्त्व होता है। हमारे घर में ही कोई न कोई शक्तितत्त्व होता है, लेकिन कोई नारद जैसा सद्गुरु हमें परिचय न करवाये तब तक हम पहचान नहीं पाते। भगवान शंकर की सवारी निकली। वेद और रीति से शिव और पार्वती का ब्याह हुआ। भगवान शंकर पार्वती सह कैलास पधारे। देवतागण भगवान की सुंदर स्तुति करते-करते अपने लोक में सिधारे। भगवान के विहार का वर्णन है मर्यादापूर्वक और इस विहार के परिणाम में पार्वती ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम कार्तिकेय। कार्तिकेय ने ताडकासुर नामक राक्षस को निर्वाण दिया; देवताओं को सुख दिया।

एक दिन कैलास के वेदविदित वटवृक्ष के नीचे भगवान महादेव अपने हाथ से आसन बिछाकर प्रसन्नचित्त बैठे हैं। योग्य समय देखकर पार्वती शिव के पास गई और कहती है, महाराज, गत जन्म में मैंने रामकथा न सुनी; आपने मना किया कि परीक्षा करने न जाओ फिर भी गई। सीता का रूप लिया। आपने मेरा त्याग किया। दूसरा जनम लिया फिर भी मन में संदेह नहीं गया कि राम सामान्य मानव है कि ब्रह्म है? मुझे रामतत्त्व समझाओ। भगवान शंकर को प्रसन्नता हुई। भगवान ध्यानरस में डूबे। मन को बहिर किया और मन में इष्ट का स्मरण किया और बाहर जब बोले तो ये पंक्ति बोले-

धन्य धन्य गिरि राजकुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।।

हे भवानी, आप धन्य हो, धन्य हो। आपके समान जगत में कोई उपकारी नहीं है। दुनिया में सबसे बड़ा उपकार करनेवाला कोई परमतत्त्व है तो ये महादेव है। और वो तत्त्व आज पार्वती को एक सर्टिफिकेट दे रहा है कि तुम्हारे समान जगत में कोई उपकारी नहीं है। बोले, आप मेरे मुख से रामकथा कहलवाने के लिए निमित्त बन गई हो। तो कथा के आयोजन में जो निमित्त बनते हैं वो धन्यवाद के पात्र है इसलिए मेरा महादेव कहता है, भवानी, तुम धन्य हो, तुम परम उपकारी हो। सती के मन का संदेह का निवारण किया। देवी, ये तो नरलीला थी राम की इसलिए ये सब करे बाकी देवी, रामतत्त्व वो है जो बिना पग चलता है। रामतत्त्व वो है जो बिना हाथ सब कुछ करता है। बिना नेत्र सबको देखता है। बिना घ्राणेन्द्रिय सब बास ग्रहण करता है। कान के बिना सुनता है। बिना शरीर सबको छूता है। ऐसी अलौकिक जिसकी करनी है। उसके धरती पर आने के कई कारण है, इनमें से कुछ कारण मैं बताऊं, ऐसा कहकर शिव रामजन्म के कुछ कारण की चर्चा करते हैं। जय-विजय एक कारण। सतीवृंदा दूसरा कारण। नारद शाप प्रभु को मिला वो तीसरा कारण राम होने का। मनु और शतरूपा की साधना चौथा कारण। प्रतापभानु को ब्राह्मणों का शाप मिला वो पांचवां और अंतिम कारण। प्रतापभानु रावण बनता है। अरिमर्दन कुंभकर्ण बनता है। प्रतापभानु का एक मंत्री दूसरे जन्म में दूसरी माता के उदर से विभीषण होता है। तीनों भाईयों ने बहुत तपस्या की। कठिन, दुर्गम, दुर्लभ वरदान प्राप्त किये और मिले हुए वरदानों का दुरुपयोग करने लगा। किसी की कृपा, किसी की क्षमा, किसी का वरदान; तीन वस्तु-कृपा, क्षमा और वरदान मिले उसका दुरुपयोग नहीं करना। जो आदमी कृपा का दुरुपयोग करता है, अस्तित्व उसके प्रति कठोर होता है। जो आदमी क्षमा का दुरुपयोग करता है, अस्तित्व के

निर्भयता स्वर्ग है; स्वतंत्रता स्वर्ग है; मन की शांति स्वर्ग है। घर में कितने सुख-सुविधा हो, साधन हो लेकिन मन की शांति नहीं तो कुछ भी नहीं। मन की शांति स्वर्ग है। भवन में कंकास न हो वो स्वर्ग है; परिवार में कंकास न हो वो स्वर्ग है। और तन में रोग न हो वो स्वर्ग है। मन में शांति हो, तन में रोग न हो, भवन में कलह न हो वो स्वर्ग है। तो ऐसे कई स्वर्ग पैदा करने पड़ेंगे। और शास्त्रों में लिखा है कि 'ॐ भूर्भुव: स्व:।' ये तीनों जिसको त्रिलोक्य कहते हैं। स्वर्ग का एक नाम है त्रिलोक्य। लेकिन मैं कहूंगा कि सत्य, प्रेम, करुणा स्वर्ग है। इसके अलावा कहां स्वर्ग है?

चेहरे पर क्रोध आने लगता है। कभी-कभी हम लोग कृपा पचा नहीं पाते और फिर उसका दुरुपयोग करते हैं।

रावण वरदान नहीं पचा पाया। लूटने लगा दुनिया को। पूरी दुनिया को त्रस्त कर दी इस आदमी ने। धरती अकुला उठी। गाय का रूप लेकर ऋषिमुनियों के पास धरती गई कि महाराज, मुझे बचाओ। देवताओं ने असहायता प्रगट की, हम नहीं कुछ कर पाते। ऋषिमुनियों ने कहा, हम भी कुछ नहीं कर पा रहे। तो करे क्या? विश्व के सर्जक ब्रह्मा के पास जाये। सब गये। ब्रह्मा ने कहा, मेरे से भी कुछ होनेवाला नहीं, अब तो हे पृथ्वी, मैं जिसका हूं और तू जिसकी है इस सबका जो परमतत्त्व परमात्मा है हम उनकी शरण में जाये वो ही हमें उबार सकते हैं। याद रखना, ईश्वर का अवतार हमारी पुकार से नहीं हुआ, एक गाय की पुकार से हुआ है। मेरा देश ये न भूले। मूल में गौ है। एक गाय ने पुकारा हरि को की, मुझे बचाओ। सब जुड़ गये। सावधान हुए। प्रार्थना करो, पुकार करो तो सावधान रहकर करो, बेहोशी में नहीं। ब्रह्मा की अगवानी में सबने मिलकर परमतत्त्व की स्तुति की, पुकार किया। परमात्मा करे, किसी के जीवन में संकट न आये लेकिन मानवजीवन में संकट का आना स्वाभाविक है। इसलिए चारों ओर संकट के पल हो तब मुझे त्रिभुवन दादा बताते थे कि सब संकट से घिर जाओ बेटा, तब ये स्तुति का पाठ करना। वो प्रगट हो कि न हो उसकी चिंता मत करना। तुने तेरा दायित्व पूरा कर दिया। अब वो उसका दायित्व करे, न करे, लक्ष्मीपति की इज्जत का सवाल है। सबने मिलकर प्रभु को पुकारा। आकाशवाणी हुई, डरो ना। मैं धरती पर अवतरित होऊंगा। प्रतीक्षा करो। सब राजी हो गये।

महाराज दशरथजी, वेदविदित व्यक्तित्व वेदों के तीनों कांड जिसके विग्रह में समाहित था; कौशल्या आदि प्रिय रानियां; सब प्रकार का सुख लेकिन पुत्र नहीं है। ग्लानि लेकर अवधपति महाराज वशिष्ठ के द्वार आये हैं। अपनी पीड़ा व्यक्त की, भगवन्, रघुकुल मेरे से समाप्त हो जाएगा? हमारे भाग्य में पुत्रसुख नहीं? वशिष्ठ ने कहा, राजन्, इतने समय तक आपने धैर्य धारण किया; अब कुछ ओर धैर्य धारण करो; एक नहीं, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। शृंगी ऋषि को बुलाया जाय। पुत्र कामेष्टि यज्ञ का आयोजन हुआ। भगति सहित आहुतियां डाली गई। आखिरी आहुति के साथ यज्ञपुरुष अग्नि के रूप में प्रसाद का चरु, प्रसाद की खीर लेकर यज्ञकुंड से बाहर आते हैं। यज्ञदेव ने प्रसाद का चरु वशिष्ठजी को दिया। वशिष्ठजी ने दशरथजी को दिया और कहा, अपनी रानियों को यथाजोग बांट दो। दशरथ ने प्रसाद बांटा। तीनों रानियों ने प्रसाद पाया।

भगवान का ब्रह्मतेज माँ कौशल्या के उदर में आया। जोग-लगन-ग्रह-वार-तिथि पंचांग अनुकूल। चराचर में मंगलमय वातावरण। रामजन्म सुख की जड़ें हैं। त्रेतायुग, चैत्र मास, नया संवत्सर शुक्लपक्ष, चैत्री नवरात्र, दुर्गापूजा-शक्तिपूजा के दिन पूरे होने और शक्तिमान को प्रगट होने की पल आई। नवमी तिथि है; मधुमास है; शुक्लपक्ष है; मध्याह्न का सूरज है; अभिजित सोह रहा है। नदियों में अमृत बह रहा है। मंद सुगंध शीतल वायु बहने लगी। देवतागण भगवान की गर्भस्तुति करके अपने-अपने स्थान में गए और यहां बिलकुल मध्याह्न के समय पर माँ कौशल्या के प्रासाद में अलौकिक रूप प्रगट हुआ है। जिसको हम परमात्मा कहते हैं, जिसको हम भगवान कहते हैं, जिसको हम ईश्वर कहते हैं, जिसको हम परमतत्त्व कहते हैं, जो कहना चाहो वो परमात्मा ने विग्रह धारण किया।

माँ कौशल्या के सन्मुख उसके प्रासाद में भगवान प्रगट हुए। माँ ने कहा अद्‌भुत रूप देखकर कि मैं किन शब्दों में स्तुति करूं? बालक के रुदन की आवाज़ सुनकर ओर रानियां दौड़ आई कि कौशल्या ने कोई शिकायत तो नहीं की प्रसर की और सीधा वच्चा रो रहा है! और बालक को कौशल्या के अंक में रुदन करते देखकर सबको भ्रम हुआ कि ये है क्या? महाराज दशरथजी के पास कोई गया और कहा कि महाराज, बधाई हो। हमारी महारानी कौशल्या ने पुत्र को जनम दिया है। आनंद में डूबे महाराज ने कहा, वशिष्ठजी को बुलाओ। गुरुदेव को बुलाया गया। वशिष्ठ महाराज ने उद्‌घोषणा की, आज ब्रह्म ही निराकार साकार हुआ है। और पूरी अयोध्या में, पूरे संसार में बधाईयां शुरू होती है। इस रमणीय भूमि पर भगवान राम के प्रागट्य की मेरी व्यासपीठ की ओर से आप सभी को बधाई हो, बधाई हो।

मानस स्वर्ग ४

स्वर्ग भूमि नहीं है, स्वर्ग भूमिका है

'मानस-स्वर्ग'; आपकी ओर से भी स्वर्ग की बहुत-सी व्याख्या मेरे पास आ रही है, लेकिन मैं आज शुरू करूं 'कठोपनिषद' से। 'कठोपनिषद' में नचिकेता मृत्यु के द्वार पर जाता है। और उसी समय वहां मृत्यु के देवता की हाजरी नहीं होती है; वो कहीं बाहर गये हैं। ओशो ने कभी इस घटना का विवरण करते हुए ऐसा कहा, मैंने पढ़ा कहीं कि हम जब मृत्यु के द्वार जाते हैं तब मृत्यु हाज़िर ही होती है। मृत्यु हमारे पास नहीं आती, हम मृत्यु के पास जाते हैं। जैसे भर्तृहरि कहते हैं, भोग नहीं भोगेगा, हम भोगे जा रहे हैं। काल हमारे पास नहीं आता, हम काल के मुख में जा रहे हैं। तो जब नचिकेता यमराज के द्वार पर गया तो मृत्यु के देवता हाज़िर नहीं थे। मृत्यु के देवता सदैव हाज़िर होता है; ध्रुव है लेकिन एकमात्र अपवाद है कथा में कि जब नचिकेता गया तब मृत्यु के देवता हाज़िर नहीं थे। ये लड़का मृत्यु के द्वार पर आठ दिन अनशन पर बैठा है। उसको बार-बार यम के द्वार से समझाया गया कि तू लौट जा। नहीं माना; मैं मुलाकात कर के ही जाऊंगा। धन्य है भारत का एक युवक। फिर तो मृत्यु के देवता आते हैं और फिर बातचीत होती है। और ये बालक जब हटा नहीं तब प्रलोभन दिया है मृत्यु के देवता की ओर से कि तू ये ले, तू ये ले, लेकिन तू जा। वो हटने को तैयार नहीं। फिर वो अग्निविद्या का दान करते हैं। मृत्यु के देवता ने जो विद्या दी है नचिकेता को वो अग्निविद्या है। उस विद्या के दौरान नचिकेता को यमराज स्वर्ग के बारे में कुछ संकेत करते हैं कि स्वर्ग मानी क्या? एक मंत्र मैंने उठाया है। हम सब उसका उच्चारण करें प्लीज़। बहुत सीधासादा मंत्र है; आप सरलता से बोल पायेंगे।

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।।
उभेतीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।

एक मंत्र का मेरी व्यासपीठ आश्रय ले रही है। सरल अर्थ है। मृत्यु के द्वार पर ये कहा गया प्रलोभन में; स्वर्ग की ये सब बातें आई तो कहा कि स्वर्ग मानी क्या? तो वहां लिखा है, 'स्वर्गे लोके न भयं', स्वर्गलोक उसको कहते हैं जहां किसी भी प्रकार का भय नहीं है। कल का व्यासपीठ का निवेदन और महामंडलेश्वर पूज्यपाद बड़े महाराजजी विष्णु देवानंदगिरिजी महाराज की स्वर्ग की व्याख्या जो थी 'वेदांत रत्नाकर' की। स्वर्ग का एक लक्षण बताया मृत्यु के देवता ने, जहां कोई भय नहीं है; जरा भी किंचित् भी भय नहीं है; कोई भी प्रकार का भय नहीं। एक स्वर्गलोक की परिभाषा करते हुए बताया कि वहां वृद्धावस्था नहीं आती, बूढ़ापा नहीं आता। तीसरा लक्षण बताया कि जहां भूख और प्यास नहीं लगती। कोई भी प्रकार का वहां शोक नहीं था। न भविष्य का भय है; न भूत का शोक है; न वर्तमान की क्षुधा-पिपासा है और शरीरयात्रा का कोई भी बूढ़ापे का तत्त्व नहीं है ऐसे स्थान में पुण्यवाले लोग मौज करते हैं, प्रसन्नता में जीते हैं।

मैं तलगाजरडी दृष्टि से इस बात को जब दर्शन करता हूं तो मुझे लगता है कि स्वर्ग की हमने कल बातें कही कि वो सूर्य से ध्रुव तारा तक इतने योजनों में उसका क्षेत्रफल है। इन्द्र राजा है। ऐरावत द्वारपाल है। बृहस्पति गुरु है। सची महारानी है। और उसका पाटनगर अमरावती है। ध्यान दे, ये मैं भूल गया था कल। अमरावती केपिटल है स्वर्गलोक का। अब यदि इस श्लोक में, इस मंत्र में इसी स्वर्ग की यदि बात है तो 'मानस' के आधार पर मैल नहीं बैठता कि वो इन्द्रवाले स्वर्गवाले रहनेवाले तो भयभीत है ही। तुलसी के ग्रंथों में भी अवलोकन है। इन्द्र निरंतर चिंताग्रस्त रहता है। नारद थोड़ी तपस्या करे, आगे बढ़े तो इन्द्र को पीड़ा होने लगती है। और डरता रहता है, भयभीत है। 'मानस' के आधार पर इन्द्र भयभीत रहता है। वहां कोई शोक नहीं है, अब क्या होगा, मर गये, मर गये, ऐसी कोई बात नहीं। लेकिन सुरलोक जो इन्द्र का लोक है वहां तो ये भी बीमारी है। क्योंकि जब भरत राम को मिलने जाते हैं तो बहुत चिंता में और शोक में डूबता है इन्द्र और इसलिए तो बृहस्पति के पास दौड़कर कहता है कि राम और भरत की भेंट नहीं होनी चाहिए। हमारा बहुत बिगड़ जाएगा। यहां कहा गया कि वहां क्षुधा-पिपासा नहीं है। चलो, चावल, दाल, भात, रोटी की भूख नहीं रहती होगी अथवा तो कोई पेय, कोई भी पदार्थ की नहीं रहती, लेकिन ये लोग प्रतिष्ठा के भूखे हैं। और प्रतिष्ठा की भूख किसको नहीं होती? आप याद रखिए मेरे भाई-बहन कि प्रतिष्ठा की भूख जिसमें चैतन्य है उसको तो होती ही है, लेकिन जड़ को भी होती है। क्योंकि विज्ञान भी सिद्ध करता है कि किसी भी जड़ पदार्थ में अत्यंत सूक्ष्मतम रूप में चेतना होती है। जहां चेतना

होती ही नहीं वहां चैतन्य प्रगट हो नहीं सकता। अहल्या शिला से प्रगट हो जाये इसका मतलब है कि चेतना दबी हुई है, सुषुप्त है। कुछ होना जरूरी है। यद्यपि प्रकृति के पांचों तत्त्व अपना परिचय देने में कहते हैं, हम जड़ है।

मुझे अच्छा लगता है, कम से कम प्रकृतिवाले जैसे हो वैसे कुबूल तो करते हैं। पृथ्वी कहती है, हम जड़ है। जल कहता है, हम जड़ है। आकाश कहता है, हम जड़ है। पांचों तत्त्व जड़ता को कुबूल करते हैं। फिर भी उसके मूल में कहीं न कहीं चैतन्य है। दो पत्थर को घिसने से कभी आग के तनखे नहीं निकलते चैतन्य न हो तो। वनस्पति में जीव है वो खोज तो हमारी भारतीयों की रही है ऋषिमुनियों की। उसके बाद जगदीशचंद्र बोझ ने उसको घोषित कर दिया। कोई भी पदार्थ चैतन्य है बहुत दबा हुआ। जैसे भगवान बुद्ध कहा करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धत्व पड़ा है, लेकिन बहुत-बहुत दबा हुआ पड़ा है। चंदन के वृक्ष की डालियां पिसी जाये, अपने आप वायु से घिसती है तो आग प्रगट हो जाती है अथवा तो खुश्बू प्रगट हो जाती है। तो कहीं न कहीं दबा हुआ है उसमें। तो प्रकृति के प्रत्येक जड़ पदार्थ को भी प्रतिष्ठा का मोह होता है। हर नदी चाहती है, मैं गंगा हो जाऊं; ये तो बोलती नहीं है; हम उसकी आवाज़ नहीं सुन पाते। हर पहाड़ सोचता है, मैं हिमालय हो जाऊं; मैं मेरु हो जाऊं; मैं चित्रकूट हो जाऊं। हर अग्नि सोचती है, मैं उपनिषदवाली अग्नि बन जाऊं, कठोपनिषदवाली अग्नि बन जाऊं; वायु चाहता है, मैं मारुतनंदन हो जाऊं, मैं पवनपुत्र हो जाऊं।

बाप! तो इन्द्रलोक में यानी स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा की भूख है। दाल, भात, शाक, रोटी की भूख तो उसे समाप्त हो भी जाती है, लेकिन प्रतिष्ठा की भूख, कीर्ति की भूख बहुत विचित्र है। 'जथा लाभ संतोष सदाई।' जो हर लेती है। 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।' और पिपासा मानी तृष्णा। स्वर्ग में रहनेवाले लोगों की तृष्णा बढ़ती रहती है। तो कठोपनिषद का श्लोक कहता है, 'स्वर्गे लोके न भयं' जरा भी नहीं, किंचित् नहीं। वहां शोक नहीं है। और वहां बूढ़ापा नहीं है। किसी का शरीर वृद्ध नहीं होता है ऐसा लिखा है; बूढ़ापा नहीं आता मिन्स प्रौढ़ता नहीं आती। इन्द्र आदि-आदि लोग ये छोटी-छोटी बातों में तो ये कर रहे हैं; बच्चे जैसी बातें करते हैं! गांभीर्य नहीं है। आदमी में धर्म हो ये जरूरी भी है, लेकिन धर्म से भी ज्यादा जरूही है धर्मशीलता। राजा धार्मिक नहीं होना चाहिए; राजा धर्मशील होना चाहिए। कई लोग अध्ययन करते हैं; अध्ययनशील कितने हैं? सवाल है 'शील' शब्द का। शील का बिलकुल साधारण अर्थ है हृदय का सुकोमल भाव। जिसके हृदय में सुकोमलता है, जिसकी वाणी में सुकोमलता है, जिसके हलन-चलन में सुकोमलता है, उसको कहते हैं शालीनता। लोग कहते हैं, आदमी शीलवान है। 'मानस' ने तो बहुत क्रांतिकारी सूत्र दिया है, धार्मिक राजा नहीं, धर्मशील राजा मिलना चाहिए। तो एक प्रकार की शीलता आये; एक प्रकार की प्रौढ़ता; बचपना नहीं। युवान आदमी होता है ना उसमें थोड़ा बचपना होता है। वयोवृद्ध विवेकी होते हैं। अपवाद होता है। लेकिन युवान हो उसमें चांचल्य होता है। उसमें अपवाद हो सकता है। जैसे नचिकेता युवान है। प्रह्लाद कुमार है। ध्रुवकुमार है। परम गांभीर्य लिए हुए हैं। सनतकुमार एक अवस्था में रहते हैं लेकिन गांभीर्य है। इन्द्र प्रौढ़ नहीं है, ध्यान देना। 'मानस' की भाषा में इन्द्र कुत्ता है। तुलसी कहते हैं, इन्द्र में प्रौढ़ता नहीं है, यौवन का चांचल्य है। तो वहां बूढ़ापा नहीं, प्रौढ़ता नहीं।

तो मुझे लगता है कि स्वर्ग भूमि नहीं है, स्वर्ग भूमिका है। स्वर्ग भूमि नहीं है; ये कोई एक टुकड़ा नहीं है; ये भू-भाग नहीं है कि वहां हम प्लोट खरीदे, मकान बनाये। हाउसिंग सोसायटी नहीं; भूमिका है स्वर्ग। आध्यात्मिक दृष्टि से और बुद्धपुरुषों की अनुभव की दृष्टि से स्वर्ग है अवस्था का नाम। स्वर्ग है स्थिति का नाम। स्वर्ग है एक प्रकार के स्टेज का नाम। 'स्टेज' शब्द कृष्णमूर्ति का है। एक स्टेज, एक लेवल का नाम है स्वर्ग। अब पुण्य करने से वो स्वर्ग मिलता है जो वर्णन हमारे यहां है। पुण्य करने से, सुक्रित करने से, सद्भाव से, सद्विचार से ऐसी भूमिका संपन्न होती है कि जीवन में कोई भय न रहे; जीवन में कोई शंका न रहे; जीवन में कोई चिंता न रहे; जीवन में चांचल्य न रहे; प्रौढ़ता आ जाये; जीवन में प्रतिष्ठा की भूख न रहे।

'महाभारत' में जब मुदगल जा रहा है स्वर्ग में और देवदूतों से उसका संवाद हो रहा है; व्यासजी युधिष्ठिर को समझा रहे हैं और वो पूछता है कि मैं जा रहा हूं, उर्ध्वगमन कर रहा हूं। देवदूत, आप आये हैं तो मुझे बताओ कि ये लोक में है क्या? और जब ये सब लक्षण सुनने के बाद मुदगल कहता है, मैं लौट रहा हूं, मुझे नहीं आना है ये स्वर्ग में। 'महाभारत' इसका प्रमाण। इसका मतलब है कि ये भूमि नहीं। स्वर्ग भूमि-लोक तो है; चलो, होगा। क्योंकि अभी हम कुछ ग्रहों को ही समझ पाये हैं; इतने ब्रह्मांड में अभी तो कहते हैं, कोई किरण तो अभी पृथ्वी पर पहुंचे नहीं। तो इस ब्रह्मांड में स्वर्ग नामक लोक होगा तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पण पृथ्वी फावी गई छे साहेब! बीजे फावे के न फावे! जलन मातरी गुजराती में एक शे'र लिखते हैं-

त्यां स्वर्ग ना मळे तो मुसीबतनां पोटलां,
मरवानी एटले में उतावळ करी नथी!

मरी जावुं, मरी जावुं उतावळ करीए ने पछी एम थाय के त्यां स्वर्ग न मळे तो! एटले में उतावळ करी नथी। तो कहने का मतलब, होगा कोई लोक यार! पृथ्वीलोक से तो हम परिचित है; बाकी होगा ही इस ब्रह्मांड में। और खोज होगी यार! शोधो तो निकल सकता है! स्वर्गलोक भी निकल सकता है। लेकिन ये मिल भी जाये तो भी क्या? जहां भय हो, जहां शोक हो, जहां प्रतिष्ठा की भूख हो, जहां तृष्णा की तृषा शांत न होती हो, जहां प्रौढ़ता-विवेक न हो वो लोक में क्या हम जाये? इससे तो बहतर है हम जहां है उस भूमि!

एक भाई ने मुझे दिया है कि बापू, 'मानस' में सात बार 'स्वर्ग' शब्द का प्रयोग हुआ है मानी उसमें 'सरग' भी आ जाता है; तीन बार शुद्ध संस्कृत 'स्वर्ग' शब्द; 'सरग' शब्द एक बार, 'सरगु' शब्द दो बार, 'स्वर्गउ' शब्द एक बार। कुल मिलाकर सात बार। और पूरे 'रामचरितमानस' में स्वर्ग के जो पर्याय शब्द है, सगोत्री शब्द है ये कुल मिलाकर सत्ताईस है। भूलचूक लेवी देवी! 'बालकांड' में 'सरग' शब्द आया है।

सरग नरक अनुराग बिरागा।
निगमागम गुन दोष बिभागा।।

एक बार 'बालकांड' में। हरीशभाई की गिनती है बरोडावाले। 'अयोध्याकांड' में दो बार-

धरनि धामु धनु पुर परिवारु।
सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु।।
सरग नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरे धनु बाना।।

'सुन्दरकांड' में चार बार, जो हम चर्चा कर चुके हैं। 'उत्तरकांड' में फिर तीन बार। जो हम रोज लेते हैं-

एहि तन कर फल बिषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।
तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।

और तीसरी बार-

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।

कुल मिलाकर सात बार 'स्वर्ग' शब्द का उल्लेख है।

'महाभारत' में जो बातें हैं, मैं आपके सामने रखूं। स्वर्ग के गुण जो बताये हैं, स्वर्ग की बातें बताई। वहां कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो घृणा करनेयोग्य और अशुभ हो। और वहां मनोरम सुगंधदायक स्पर्श और कानों को प्रिय लगनेवाले दो शब्द सुनने में आते हैं। स्वर्गलोक में न शोक होता है। जो कठोपनिषद में भी उसका प्रमाण है। स्वर्गलोक में न शोक होता है, न बूढ़ापा; जो अभी हमने चर्चा की। वहां थकावट नहीं होती। ई सारुं! थाक ज नो लागे इ सरस! मारे जो मारुं स्वर्ग गोतवुं होय तो मने व्यासपीठ पर थाक नथी लागतो। मारुं स्वर्ग आ। हुं आटलां वर्षोथी गाउं छुं, मने थाक नथी लागतो व्यासपीठ पर। तो स्वर्गलोक में थकावट नहीं होती ये मुद्दा अच्छा लगा। मानसिक रूप में शारीरिक रूप में चिंता में लोग थक गये हैं। तो इसका मतलब हो गया कि जिस भूमिका में श्रम महसूस न हो वो तुम्हारा स्वर्ग है। इतनी कथाएं आपने सुनी फिर भी थकते नहीं तो कथा तो तुम्हारा स्वर्ग है; सीधी-सी बात है। क्यों सुनते हो यार! वो ही मोरारिबापू, वो ही 'मानस।' फिर भी आप सुनते हो। इसका मतलब है कि थकावट नहीं है। थकावट नहीं होती तो ये स्वर्ग है। वहां थकावट तथा करुणाजनक विलाप भी श्रवणगोचर नहीं होते। करुणाजनक आक्रंद नहीं होता; स्वर्ग में कोई पीड़ा से कोई रोते नहीं। मैं तो इतना ही कहूं कि जिस परिवार में, जिस घर में करुणाजनक आक्रंद न हो, एक-दूसरे को देखकर आंख में आंसू आया, एक-दूसरे की प्रगति देखकर आंखें नम हुई हो लेकिन आक्रंद न हो वो स्वर्ग है। मनुष्य वहां अपने किये हुए पुण्य कर्मों से ही रह पाते हैं। पुण्य के बिना स्वर्ग नहीं मिलता है। बहुत पुरातन-सनातन सूत्र है, पुण्य स्वर्ग देता है। पुण्य होता है यज्ञ से, परोपकार से। यद्यपि पुण्य-पाप दोनों में मेरी रुचि नहीं है। लेकिन पुण्य का परिणाम है स्वर्ग, ऐसा बिलकुल सनातन विचार है। पुण्य कर्मों से ही वहां लोग रह पाते हैं।

व्यासजी बोले, स्वर्गवासियों के शरीर में तेजस तत्त्व की प्रधानता होती है। वे शरीर पुण्यकर्मों से ही उपलब्ध होते हैं, माता-पिता के विहार से नहीं। उस शरीर में कभी पसीना नहीं निकलता। शरीर में से दुर्गंध नहीं आती स्वर्ग में। स्वर्गलोक तो आपने देखा नहीं है, लेकिन यौगिक प्रक्रिया में ऐसा लिखा है कि जो योग की साधना में आगे-आगे बढ़ते हैं उसके शरीर में दुर्गंध नहीं आती, पसीना आता है। पसीने की भी दुर्गंध नहीं आती। कहते हैं कि रमण महर्षि के शरीर से भी कभी दुर्गंध नहीं आती थी। और उनमें मलमूत्र की दुर्गंध भी कम हो जाती है ऐसा योगियों के जीवन में भी बताया। और यहां स्वर्गलोक में भी ऐसी मात्रा की बात बताई है।

व्यासजी कहते हैं, उनके कपड़ों में कभी मैल नहीं बैठता। योगियों के बस्त्रों में कभी मैल नहीं हो

सकता। महापुरुष जो होते हैं, उसके जीवन में ऐसा होता है। स्वर्गवासियों की मालाएं होती है वो कभी कुम्हलाती नहीं। स्वर्ग में रहनेवाले जो माला पहनते हैं वो कभी मुरझाती नहीं। अच्छा है। अब स्वर्ग का तो अनुभव नहीं है; यहां हमारा स्वर्ग क्या कि हमारे हाथ में जो बेरखा या माला घूमती हो वो कभी मुरझाई नहीं; रोज रंग बदले, रोज उसकी खुश्बू निकले वो स्वर्ग है। भजन स्वर्ग है। नामजप जिस पर बहुत हुआ हो वो मालाएं दर्शनीय हो जाती है। कई भजनानंदी पुरुषों की माला के दर्शन से पाप कट जाते हैं सा'ब! ये मैं बहुत भरोसे के साथ निवेदन कर रहा हूं; बुद्धि कुबूल न करे तो न करे, लेकिन माला का दर्शन आदमी को पापमुक्त करता है। माला की इतनी शक्ति होती है। स्वर्ग में सभी लोग विमान में ही घूमते रहते हैं! जो अपने सत्कर्मों द्वारा स्वर्गलोक पर विजय पा चुके हैं वे वहां बड़े सुख से जीवन बीताते हैं। उनमें किसी के प्रति इर्ष्या नहीं होती; वे कभी शोक तथा थकावट का अनुभव नहीं करते एवं मोह और मत्सर्य से सदा दूर रहते हैं। मुश्किल है। यहां भूमिका होनी चाहिए, भूमि नहीं।

'मानस' के आधार पर स्वर्गलोक में बहुत इर्ष्या है। लेकिन यहां भूमिका है कि जो आदमी किसी की इर्ष्या न करे, जो आदमी किसी का द्वेष न करे वो निरंतर स्वर्ग-निवास है। जो आदमी द्वेषभाव से सर्वदा दूर है उसके पास बैठना स्वर्ग-निवास है। ऋषि कहता है कि मुदगल, स्वर्ग में दोष भी है। मैंने तुम्हें स्वर्ग के गुण बताये, अब वहां के दोष भी मुझसे सुन लो। और अपने किये हुए सत्कर्मों का जो फल होता है वही स्वर्ग में भोगा जाता है; वहां कोई नया कर्म नहीं किया जाता, ये उसका दोष है। वहां जो हम कमाई ले गये वो भोगना ही होता है; वहां नया अर्जित नहीं कर पाते। उसको दोष बताया। मुदगल, स्वर्ग में सबसे बड़ा दोष मुझे यह जान पड़ता है कि कर्मों का भोग समाप्त होने पर यहां से पतन हो जाता है। स्वर्गलोक से गिरते समय वहां के निवासियों की चेतना लुप्त हो जाती है; रजोगुण के आक्रमण से उनकी बुद्धि बिगड़ जाती है। पहले उनके गले की मालाएं कुम्हलाने लगती है; इससे पतन की सूचना मिल जाने से मन में बड़ा भारी भय समा जाता है। स्वर्गवालों की माला कुम्हलाने लगे तब समझना कि पतन का अवसर आया और उसके कारण उसको फिर कष्ट होने लगता है कि माला मुरझाई, अब जाने का समय हुआ! भजन कम हो तो माला पर उसका कष्ट होना चाहिए कि आज मुझे जितना भजन करना चाहिए वो कम हुआ। शरीर के अंदर प्रतिकारक शक्ति कम होती है तो बहिर् रोग बहुत हुआ करते हैं, वैसे आदमी संतापों से, समस्याओं से लड़ने में कमजोर हो जाता है। जब उसका भजन कमजोर हो जाता है तो माला मुरझाने लगती है तो फिर उसको डर लगता है कि जाना पड़ेगा। ब्रह्मलोक पर्यंत जितने लोक है जिनमें ये भयंकर दोष देखे जाते हैं। स्वर्गलोक में रहते समय तो पुण्यात्मा में सहस्रों गुण होते है परंतु वहां से भ्रष्ट हुए जीवों का भी एक अन्य श्रेष्ठ गुण देखा जाता है; वे अपने शुभ कर्मों के संस्कार से युक्त होने के कारण वहां से गिरने के कारण भी मनुष्य योनि में ही जनम लेते हैं। ये बड़ा गुण है। स्वर्ग में पतन होता है, फिर मनुष्य योनि में जीव आता है। मुझे तो लगता है कि कोई-कोई ऐसे पुण्यात्मा होंगे कि मनुष्य योनि में तो जीवन मिलता है लेकिन पृथ्वी पर ही मनुष्य जीवन है। अभी तो जीवन मिलता है और भारत में जीवन मिलता है; हिन्दुस्तान में जीवन मिलता है। वहां भी वो महाभाग मानव सुख के साधनों से संपन्न होकर ही उत्पन्न होता है, परंतु यदि मानव योनि में वह अपने कर्तव्य को न समझे तो उससे भी नीची योनि में भेज दिया जाता है। इस मनुष्यलोक में मानवशरीर द्वारा जो कर्म किया जाता है उसीको परलोक में भोगा जाता है।

व्यासजी कहते हैं, राजन्, देवदूत की यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ मुदगल ने उस पर बुद्धिपूर्वक विचार किया और विचार करके उन्होंने देवदूत से कहा, हे देवदूत, आपने मुझे बहुत गुण-दोष बताये लेकिन अब आप सिधावो; मैं आनेवाला नहीं। स्वर्ग अथवा वहां का सुख महान दोष से युक्त है इसलिए मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। वो पतन के बाद तो स्वर्गवासी मनुष्यों को अत्यंत भयंकर महान दुःख और अनुताप होता है। और फिर भी इसी लोक में विचरते रहते हैं इसलिए मुझे स्वर्ग में जाने की इच्छा नहीं है। जहां जाकर मनुष्य कभी शोक नहीं करते, व्यथित नहीं होते तथा जहां से विचलित नहीं होते, केवल उसी अक्षयधाम को ही परमपद का अनुसंधान करूंगा। 'महाभारत' में से बहुत बड़ा प्रमाण यहां मुझे प्राप्त होता है।

तो बाप! 'मानस-स्वर्ग' के बारे में हमारी खास केन्द्रीय चर्चा है। बिलग-बिलग शास्त्रों से जो आधार मिलता है उसके आधार पर हम तात्त्विक-सात्त्विक संवाद कर रहे हैं। मूल पोईन्ट पर आये कि शरीर का फल विषय नहीं है, विषय फूल है। फूल से हमें फल की ओर से हमें रस की ओर यात्रा करनी है। अब फल की ओर जरा प्रगति करे। फल क्या है? विषय तो फूल है; फूल है सुनना। और सुनना एक फूल है तो सुनने के बाद उसका फल क्या? 'बिनु सतसंग बिबेक न होई।' विवेक है फल। हम

विषयरूपी फूलों का आस्वाद करें, उसका दर्शन करें, उसके रूप को एन्जोय करें, उसके रस को महसूस करें, ये सब ठीक है लेकिन धीरे-धीरे विवेक प्राप्त करें। ये विवेक है फल। और विवेक जीवन में बहुत आवश्यक है बाप! विवेक दो प्रकार का- स्थूल और सूक्ष्म; लौकिक और अलौकिक। कैसे बैठना, कैसे बोलना, कैसे सुनना, कैसे खाना, कैसे पीना, कैसे चलना ये सब लौकिक विवेक है। अलौकिक विवेक है जीवन में कई प्रकार के शोक आ जाये, मुश्किल आ जाये, उस वक्त भी चलित न हो।

मैं विंध्याचल का आपको दृष्टांत देता था तो वहां भी भरतजी का एक पौराणिक संदर्भ आता है। भरत ने अपने स्नेह को संभाला; इतना प्रेम बढ़ गया तो प्रेम को रोका। जैसे विंध्याचल बढ़ता जाता है और अगस्त्य ऋषि उसे लेटा देते हैं। स्नेह की मात्रा को जरा रोकना भी सीखो। प्रेम बाजारू चीज नहीं है कि जहां-तहां दिखाते चलो! कुसमय समझकर उसको रोको। वहां भरत बहुत बड़ा मेसेज देते हैं। भरतजी राम भगवान को मिलने के लिए चित्रकूट आये; हमें कोई मिलने आता है तो हम क्या कहते हैं, कब आये यार! यात्रा ठीक थी? जलपान कुछ लोगे, ठंडा-गरम? ये विवेक करना चाहिए ना? ये जरूरी है लेकिन ये सामान्य प्रेम का स्तर है; ये व्यवहारु प्रेम है। जरूरी है। लेकिन परम प्रेम की बात ओर है।

भरत जब राम को मिलने आये तो रामजी ने 'को कछु कहहिं न को कछु पूछा।' कोई बोलता नहीं है, कोई पूछता नहीं है। प्रेम में डूबे सबका मन विलीन है। भगवान राम अधीर हो गये! अधीरावतार; राम का वहां अधीरावतार है। मैं नामकरण कर रहा हूं। नया अवतार हुआ है। वो ही राम जब लंका से लौटे तो धीरावतार हो आये। वो परमप्रेम की दशा नहीं। भरत को कुशल पूछते हैं। चित्रकूट में कोई कुशल नहीं पूछा। लंका है स्वर्गलोक। अयोध्या है अपवर्ग लोक। चित्रकूट है प्रेमलोक। अब कहां जाना, किसकी टिकट कटानी, आप पर छोड़ देता हूं। लंका है स्वर्गलोक अवश्य, स्वर्ग के जो लक्षण है लंका में है। लंका है सोने की लेकिन मुक्तिदायिनी अयोध्या है मोक्षदायिका; मोक्षलोक है अयोध्या। लेकिन दोनों से ऊपर यदि कोई लोक है तो प्रेमलोक है, वो है चित्रकूट। परमप्रेम में सब भुला जाता है। अहल्या सब भूल गई! वहां अहल्या के जीवन में भी राम सामने आये तो तुलसीदासजी को लिखना पड़ा-

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा।
मुख नहिं आवइ बचन कही।।

क्या अर्थ करोगे यार! अहल्या चट्टान बनकर गिर गई। जब प्रगट हुई तब 'अति प्रेम अधीरा।' इससे पहले वो चट्टान-पत्थर की तरह है। तो अहल्या जब प्रगट होती है तब प्रेम अधीर स्थिति तक उसको पहुंचा देता है। भगवान सोचने लगे कि अहल्या का मैं उद्धार करूं लेकिन उसमें नौ में से एक भक्ति हो तो भी मैं उद्धार कर दूं। लेकिन कुछ तो होना चाहिए, वरना लोग एक गलत दृष्टांत ले लेंगे। तो भगवान नौ प्रकार की भक्ति गिनने लगे।

'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' पहली भक्ति तो सज्जन का संग, संत का संग। तो देखा अहल्या में वो बेचारी संग करने के लिए कहां जाए? पत्थर है, पैर भी नहीं है। चलकर जाये संतसंग करने के लिए तो कहां जाये? तो भगवान ने सोचा कि चलो, वो भक्ति हम कर लेते हैं। पहली भक्ति अहल्या को नहीं करनी पड़ी, राम स्वयं कर रहे हैं। करुणा देखिये! 'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।' भगवान ने सोचा कि दूसरी भक्ति तो कथा सुनना है। तो ये बेचारी को कान नहीं है। पत्थरदेह है। तो कैसे सुने? तो मेरी कथा तो सुन नहीं पाती तो चलो यूं करे, उनकी कथा हम सुन लें। शिला देखकर भगवान ने प्रश्न किया और मुनि से अहल्या की कथा राम ने सुनी। दूसरी भक्ति राम के द्वारा हुई। सब त्रिभुवनदास दादा की देन है। प्रसादी वहीं से आ रही है। स्मृति आ रही है। गुरु के चरणकमल की, गुरु की चरणरज की सेवा ये तीसरी भक्ति। अब ये बेचारी कैसे सेवा करे? हाथ नहीं, चल नहीं सकती, बोल नहीं पाती! तो भगवान को लगा, चलो ये भक्ति भी मैं कर लूं। 'चरन कमल रज

> स्वर्ग भूमि नहीं है, स्वर्ग भूमिका है। स्वर्ग भूमि नहीं है; ये कोई एक टुकड़ा नहीं है; ये भू–भाग नहीं है कि वहां हम प्लोट खरीदें, मकान बनायें। हाउसिंग सोसायटी नहीं; भूमिका है स्वर्ग। आध्यात्मिक दृष्टि से और बुद्धपुरुषों की अनुभव की दृष्टि से स्वर्ग है अवस्था का नाम। स्वर्ग है स्थिति का नाम। स्वर्ग है एक प्रकार के स्टेज का नाम। 'स्टेज' शब्द कृष्णमूर्ति का है। पुण्य करने से, सुक्रित करने से, सद्भाव से, सद्विचार से ऐसी भूमिका संपन्न होती है कि जीवन में कोई भय न रहे; जीवन में कोई शंका न रहे; जीवन में कोई चिंता न रहे; जीवन में चांचल्य न रहे; प्रौढ़ता आ जाये; जीवन में प्रतिष्ठा की भूख न रहे।

चाहति कृपा करहु रघुबीर।' तीसरी भक्ति भी राम ने की; सेवा राम ने की; चरणरज का दान किया अहल्या को। अहल्या ने कुछ नहीं किया।

तीन प्रकार की भक्ति राम ने कर दी, उद्धार हो गया; अहल्या प्रगट हो गई। तो भगवान ने चल दिया। प्रभु चल दिये तो अहल्या ने कहा, रुको। आप नौ प्रकार की भगति कहते हैं ना? आपने तो तीन की। बोले, तीन मैंने की, छः तू कर। मैंने प्रकट कर दिया। कोई बुद्धपुरुष हमारी चेतना को प्रगट कर दे उसके बाद आगे का कर्म हमारा होना चाहिए कि तीन भक्ति से मैंने तुम्हें पाषाण से प्रगट कर दिया; तेरी जड़ता को चेतना से भर दिया। अब आगे की भक्ति तू कर। चौथी भक्ति क्या है? गुणगान करे कपट छोड़कर वो चौथी भक्ति। छल-कपट छोड़कर हरिगान अहल्या ने शुरू किया। अति निर्मल बानी, छलमुक्त बानी और गुणगान गाने लगी ये चौथी भक्ति। पांचवीं भक्ति भी करने लगी, दृढ़ भरोसा हो गया हरिनाम में; निरंतर कोई सुन न पाये ऐसे मंत्रजप दृढ़ भरोसा हुआ ये पांचवी भक्ति भी अहल्या की ओर से। 'छठ दम सील विरति बहु करमा।' अनेक कर्मों से बैराग्य आ गया, बहुत क्रियाकलाप से मुक्त हुई, छठ्ठी भक्ति ये है।

पहले इन्द्र में गौतम देखा और गौतम मानकर छली गई। अब कोई भी फरेबी आये तो भी उसको ब्रह्ममय सृष्टि दिखने लगी। 'सातवँ सम मोहि मय जग देखा।' ये हुई। 'आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखई परदोषा।' आठवां अब संतोष हो गया। संतुष्ट हो गई और किसी पर उसने दोषारोपण नहीं किया; अनुग्रह व्यक्त किया।

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियं हरष न दीना।।

और भरोसेवाले फिर दिखते नहीं। भरोसेवाले भटकते नहीं। भरोसेवाले खो जाते हैं। इसलिए उसके बाद अहल्या कहीं दिखती नहीं। तो नौ प्रकार की भक्ति वो तीन राघव की ओर से; छः अहल्या की ओर से।

तो हमारी चर्चा चल रही है बाप! विषय फूल है; विवेक फल है। और विवेक लौकिक-अलौकिक दो, स्थूल-सूक्ष्म, व्यवहारु और पारलौकिक ये फल है। उसके बाद रस है प्रीत। प्रीति को तुलसी ने रस कहा। परमात्मा करे, हमारी यात्रा रस तक पहुंचे। अब शेष समय थोड़ा जो है उसमें कथा का क्रम लूं।

कल हम सबने कथा के क्रम में संक्षेप में भगवान राम के जन्म की-प्रागट्य की कथा गाई। जैसे भगवान राम का प्रागट्य कौशल्या के भवन में हुआ वैसे ही कैकेई ने भी पुत्र को जनम दिया; सुमित्रा ने दो पुत्रों को जनम दिया। एक महीने तक उत्सव अयोध्या में चला। समय बीतने लगा। चारों राजकुमार के लिए नामकरण संस्कार का उत्सव मनाया गया और वशिष्ठजी नामकरण करते हैं। कौशल्यानंदन के सिर पर हाथ रखते हुए भगवान वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, जो आनंद समुद्र है, सुख की राशि है, पूरे संसार में व्याप्त तत्त्व है यह जो सबको आराम देगा, विराम देगा उसका नाम मैं राम रखता हूं। आराम दे वो राम बस, विश्राम दे वो राम। अभिराम हो वो राम। विराम दे वो कोई भी तत्त्व राम बस। रामनाम की औषधि मानी गई है। मैंने कई बार दोहराया कि तुम्हारा सर दर्द होता हो और रामनाम की औषधि का उपयोग करे कि ठीक हो जाये, हो भी सकता है; श्रद्धा जगत की बात है। जलन साहब का फिर एक शे'र-

श्रद्धानो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर,
कुर्रानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

रामनाम से सरदर्द ऊतर जाये, पीड़ा मिट जाये इसका मतलब जिस साधन से पीड़ा मिट जाये उस साधन को राम मानो। एनासिन की गोली लो और इससे सरदर्द कम हो जाये तो टीकडी को राम मानो। जिससे विश्राम प्राप्त हो उस तत्त्व का नाम राम है। पूरे विश्व का भरणपोषण जो करेगा, योगक्षेम जो करेगा, सबको भर देगा ऐसे ये कैकेई के पुत्र का नाम मैं भरत रखता हूं। जिसके नाम से शत्रुबुद्धि नाश होगी, शत्रुता मिटेगी, दुश्मनी मिटेगी; वैरी नहीं, वैर मिट जाएगा इस बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। और समस्त शुभ लक्षण का जो धाम है, राम का प्रिय है, सकल जगत का जो आधार है शेष के रूप में; वशिष्ठजी ने उसका नाम लक्ष्मण रखा। तो हृदय से विचार करके वशिष्ठजी ने चारों भाईयों का नामकरण किया और कहा कि तुम्हारे ये पुत्र केवल पुत्र नहीं है, वेदों के सूत्र है।

परमात्मा मंगलमय लीला करते है। कुमार अवस्था में भगवान आ गये। यज्ञोपवित संस्कार किया। गुरुगृह भगवान पढ़ने गये हैं। अल्प काल में सब विद्या प्रभु ने प्राप्त कर ली। जिसके श्वास-श्वास में चारों वेद हो उसको क्या पढ़ना? लेकिन जगत को दिखा रहे हैं कि मैं ब्रह्म हूं तो मैं भी पढ़ने गया। विद्या संपन्न होकर उपनिषद-वेद आदि पढ़कर के भगवान लौटे हैं और गुरु के आश्रम में जो सीखे हैं ये सब सूत्र केवल स्वाध्याय में मर्यादित नहीं रहा, जीवन के आचरण में आया। समय बीतने लगा है। गोस्वामीजी प्रसंग बदलते हैं। विश्वामित्र नाम के महातपस्वी मुनि बक्सर में सिद्धाश्रम में रहते हैं। यज्ञ करते हैं। आसुरी तत्त्व विघ्न डालते हैं। चिंतित विश्वामित्र राम की मांग के लिए सहाय के लिए अयोध्या आते हैं। और ये पूरा प्रसंग हम जितना समय मिलेगा, कल आगे बढ़ायेंगे।

मानस स्वर्ग ५

स्वीकार स्वर्ग है, अस्वीकार नर्क है

बाप! बहुत ऊंची भूमिका पर कही गई कथा के वक्ता-श्रोता, करीब-करीब समांतर ऊंचाई पर एक दूसरी चोटी पर बैठे वक्ता-श्रोता, उसके बाद समथल भूमि पर बैठे वक्ता-श्रोता और उसके बाद चरणों में, गहराई में, दीनता में बैठे हुए श्रोता-वक्ताओं को प्रणाम करते हुए मैं मेरे सभी श्रोताओं को प्रणाम करता हूं। 'मानस-स्वर्ग'; तो बाप! 'रामचरित मानस' की इस नौ दिवसीय कथा जो भगवद् इच्छा से आयोजित हुई है उसमें आज के दिन की कथा के आरंभ में कुछ ओर दर्शन करें। एक सौ आठ उपनिषद है इनमें से संन्यास जगत बारह को या कोई-कोई चौदह को प्रधान मानते हैं। और छोटे-बड़े ओर कई उपनिषद है; कुछ उपलब्ध है, कुछ न भी है। इनमें से एक उपनिषद का नाम है 'तेजोबिन्दु उपनिषद।' उसका थोड़ा ये मंत्र जिसमें स्वर्ग की एक नूतन परिभाषा प्रस्तुत की गई है। 'तेजोबिन्दु उपनिषद' का जरा दीर्घमंत्र है; सरल है। पहले मैं बोलूं फिर आप सब।

अखण्डैकरसं ध्यानमखण्डैकरसं पदम्। अखण्डैकरसं ग्राह्यमखण्डैकरसं महत्।।
अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डैकरसं धनम्। अखण्डैकरसं भोज्यमखण्डैकरसं हविः।।
अखण्डैकरसो होम अखण्डैकरसो जपः। अखण्डैकरसं स्वर्गमखण्डैकरसः स्वयम्।।

कुछ बातों के अखंड रस को यहां ऋषि ने स्वर्ग कहा है। इसलिए एक वस्तु पक्की हो जाती है कि स्वर्ग भूमि नहीं है, भूमिका है क्योंकि यहां जो अखंड स्वर्ग की उपाधि दी है इनमें से करीब-करीब कोई अखंड रस तथाकथित स्वर्गलोक में 'मानस' के आधार पर उपलब्ध नहीं है। इसलिए ये वो स्वर्गलोक की बात नहीं है, लेकिन हमारे अंदर एक आलोक जिसको कल अवस्था कहा, जिसको कल एक लेवल-भूमिका कहा उसी अखंड रस को उपनिषद का ऋषि स्वर्ग कहते हैं।

पहला सूत्र, 'अखण्डैकरसं ध्यानमखण्डैकरसं पदम्।' पहली बात। जो आदमी ध्यान करता है; 'पदम्' का यहां अर्थ है पद-आसन-स्थान। जिस स्थान में बैठकर आदमी ध्यान में बैठता है और ध्यान का अखंड रस का अनुभव करता है वो स्वर्ग है। तिबत को हम स्वर्ग कहते हैं। कैलास आजकल हमें परमिशन लेनी पड़ती है; देश के उस काल के आदरणीय नेताओं ने जो कुछ गलत फैसले किये उसका परिणाम हिन्दुस्तान भोग रहा है! तो आज कैलास नहीं है, लेकिन कैलास पर जो शिव ध्यान करते हैं ये 'तेजोबिंदु उपनिषद' का अखंड रस ध्यान है। 'मगन ध्यान रस दंड जुग।' और कैलाल स्वर्ग है इस अर्थ में तो लोग ध्यान करते हैं। बाप! यज्ञ, जप,तप, ध्यान, स्मरण, कथा, प्रवचन, श्रवण आदि जो करते हैं और उसमें हमारी और आपकी अखंड रसिकता बनी रहे तो ये स्वर्ग है। मैं गाऊं, मैं बोलूं गुरुकृपा से और उसमें मेरा अखंड रस बना रहे तो मेरा बोलना ये स्वर्ग है। आप श्रवण करे ध्यान से, प्रसन्न चित्त से, बिलकुल एकाग्रता से और आपको अखंड रस महसूस हो तो ये स्वर्ग है।

आज मेरे पास एक शिकायत है। 'बापू, जय सीयाराम अने तमारां चरणोमां प्रणाम। बापू, Please can you tell your older shrotas who listen your katha so many years. कुछ लोग बहुत सालों से आपकी कथा सुन रहे हैं। उसको ओर्डर कर सकते हैं आप कि आप बापू चौपाई बोले इससे पहले शुरू न हो जाओ।' मनेय खबर छे! आखी दुनियाने खबर छे, तमने मारा करतां चोपाइयो वधारे आवडे छे! पण कन्ट्रोल करो। क्यारेक क्यारेक अहींथी शुरू थई जाय, मारे रोकवा पडे छे! मुझे कैसे लेना है? कैसे-कैसे एक-एक शब्द; मैं एग्री होता हूं कि हां, आपको याद है लेकिन इतनी जल्दी न करो। दूसरे का ध्यान व्यासपीठ से हटकर आपकी खडपीठ की ओर जाता है!

इतनी जल्दी भी क्यों है? यही करना है तो मेरे से काली शोल लेकर शुरू कर दो ना कथा! कई लोग तो मैं कोई कविता शुरू करूं तो उसको पता ही नहीं कि इससे पहले कह दे, तुषारभाईनी लागे छे! आ नीतिनभाईनी छे! अरे पण राह जुओ ने! तो पहेलां बोलवा मांडे! एक गरीब श्रोता की शिकायत। हमने अभी दो-तीन कथा सुनी है बापू, रस का तंतु बंध रहा है और आपके कायम सुननेवाले श्रोता हमारा रसभंग करते हैं। अब मैं दृष्टांत देता हूं तो कई बार दिया हुआ हो, तो किसी को याद होगा तो, हवे जो आम आवशे हो! नहीं; अपने को कन्ट्रोल करो। आमां बहेनो वधारे जवाबदार छे, माफ़ करियेगा। तो दूसरे का रसभंग ना करो। इतनी जल्दी भी क्यों है? मेरे नये जो फ्लावर खिल रहे हैं उसके खिलने में बाधा न बनो, प्लीज़।

तो हमारी चर्चा चल रही थी, वक्ता अखंड रस में डूबकर बोले तो स्वर्ग है। श्रोता अखंड रस में डूबकर सुने तो स्वर्ग है। कोई ध्यान करनेवाला भले दो घड़ी, दो पल यदि अखंड रस बन जाये तो ये स्वर्ग है। दूसरा सूत्र, दूसरा अखंड रस बहुत महान है। अब उपनिषद को तो मैंने आज सुबह देखा लेकिन ये बात मैं सालों से कह रहा हूं। ठहरी हुई बुद्धि में शास्त्र अपने आप ऊतरते हैं; ये सूत्र लागू हो जाता है। यहां लिखा है, वो ही अखंड एकमात्र रस है, तुम जो परिस्थिति आये उसको ग्राह्य करना सीखो। हर पल को ग्राह्य करना जो सीख लेता है वो स्वर्ग में जीता है। अब ये ग्राह्य अखंड रस है स्वीकृति। और कठिन है। स्वीकार बड़ी तपस्या मांगता है। इसलिए जब मैं स्वीकार की बोली बोलता हूं तब मेरी एक प्रार्थना मेरे श्रोताओं को कि वक्ता को, व्यक्ति को और उसके वक्तव्य को भी सावधानी से सुनो। जल्दी वक्ता को भी न पकड़ो, वक्तव्य को भी न पकड़ो। थिंक ट्वाईस, दो बार सोचो। यदि हम हर घटना को स्वीकारना सीख लें तो उपनिषद कहती है, ये पल तुम्हारा स्वर्ग है। अब इससे ओर स्वर्ग की दिव्य परिभाषा क्या हो सकती है? हमारी मुश्किल यही है। मैं भी आपके साथ हूं। हम तत्क्षण इस पल को नहीं कुबूल कर पाते।

महान से महान अखंड रस है स्वीकृति-स्वीकार, ये स्वर्ग है। फिर सूत्र बना लो, स्वीकार स्वर्ग है, अस्वीकार नर्क है। यार! लाख आप मेहनत करे, प्रयत्न करे, बिना स्वीकार कोई चारा नहीं है। कुबूल करना पड़ता है। जितने अवतार हुए और जितने बुद्धपुरुष हुए, हम सब उससे सीख लें। मैं बिलकुल दृढ़ता से मानता हूं कि परमात्मा तो 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थः।' भगवान करने योग्य भी कर सकता है, न करना है वो भी कर लेता है। किया हुआ विफल भी कर सकता है, विफल को सार्थ भी; सब कुछ करने में वो समर्थ है। लेकिन परमात्मा भी नियति के सामने बलवा नहीं करते।

तो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं मेरे भाई-बहन कि बुद्धपुरुष भी नियति को कुछ कर सकता है, लेकिन ईश्वर नियति को नहीं रोकता तो बुद्धपुरुष भी साक्षी हो जाता है। इसलिए 'अखण्डैकरसं ग्राह्यमखण्डैकरसं महत्।' स्वीकारो। विद्यार्थी भाई-बहन, आप मेहनत करो; कोलेज, युनिवर्सिटी, महाविद्यालय में पढ़ो; खूब होमवर्क करो, खूब स्टडी करो, ट्यूशन रखो; जो करो लेकिन परिणाम में इतने हिल मत जाओ। छोड़ दो नियति पर। स्वीकार कर लो जो है। हम मन इच्छित परिणाम लाना चाहते हैं, वहां मुश्किल है। हमारे मन की इच्छा के अनुकूल सब होता है तो तो आप भी राम की तरह 'निज इच्छा निर्मित तनु' कर सकते थे। अपना बोडी, अपने ढंग से बना सकते थे। गोरा बनना तो गोरा; काला बनना तो काला; हाईट जितनी रखनी हो उतनी रखो। यू केन, लेकिन हमारे हाथ में नहीं है। सत्संग क्यों है? हरेक व्यक्ति डांवाडौल हो जाता है परिस्थितियों के आगे तब नियति के निर्णय को स्वीकारो। ये विवेक है, ये समझ है।

तो मुझे ये सूत्र बड़ा प्यारा लगता है कि घटना को ग्राह्य कर लेना, स्वीकार कर लेना। जैसे शंकर कहते हैं, सोचते हैं, स्वीकार कर लेते हैं 'रामचरितमानस' में-

होइहि सोई जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।।

और ऐसी स्थिति में जब राम पर छोड़ने के बाद; हम जीव है, मैं आपके साथ हूं प्लीज़, ये सब करते हुए कथा सुनने के बाद चलो, छोड़ दिया हरि पर फिर भी अंदर कुछ धमासान रहेगी, क्या होगा? उसी समय ओर कुछ मत करो प्लीज़, बेरखा ले लो; हरिनाम ले लो।

अस कहि लगे जपन हरि नामा।
गई सती जहँ प्रभु सुखधामा।

बेरखा ले लो मानी हरिनाम लो। माला में जपो तो माला में, बेरखा हो तो ऊंगली पर; कुछ नहीं हो तो होठों से; होठों से नहीं तो मन से शांति से हरि का आश्रय करो। कोई भी नाम का आश्रय करो। इसके बिना कोई उपाय नहीं है, याद रखना।

मैंने आपको एक दिन कहा था, परम स्नेही नीतिनभाई वडगामा ने बेरखा पर कुछ पद लिखे हैं। तो मैंने कहा था, मुझे मिलेगा तो मैं ले आऊंगा। तो आज ले आया हूं। मैं कोशिश करूं मालकोष में गाने की।

वेदना मंत्रो भणे छे बेरखो।
गीत गरवां गणगणे छे बेरखो।
ए ज आठे पहोर ढांके अंगने,
वस्त्र एवां कंई वणे छे बेरखो।

कोण लाज राखे? बेरखो, हरिनाम, प्रभु का नाम।

श्वासमां वागी रही छे वांसळी।
रोमरोमे रणझणे छे बेरखो।

बेरखा ऊपरनुं बीजुं पद। बधांमांथी बे-बे, त्रण-त्रण पंक्ति।

रोज हैयामां फरे छे बेरखो।
वहाल थईने विस्तरे छे बेरखो।

प्यारी दो पंक्तियां। सब प्यारी है; ये विशेष।

मंत्र मूर्ति नो दरज्जो पामतो,
ने धजा थई फरफरे छे बेरखो।

कैसे कवि मोड़ता है! 'रात-दि' फरतो रहे करवा रटण।' फरतो शुं काम रहे छे? 'रात-दि' फरतो रही करवा रटण', 'टेरवाने करगरे छे बेरखो।' तें मूकी केम दीधो यार! तारा टेरवाथी तुं मने फेरव रात-दि' टेरवाने करगरे छे बेरखो। बेरखानी आ त्रिपदी। तीसरी रचना।

साद भीनो सांभळे छे बेरखो।
हरपळे सामो मळे छे बेरखो।
तार जोडाई गयो छे आखरे,
साव अंदर ओगळे छे बेरखो।

लेकिन मैंने पहले दिन जिस पंक्तियों के लिए नीतिनभाई को याद किया था, बेरखा वो है-

कारमुं एकांत डंखे ए क्षणे।
जातने घेरी वळे छे बेरखो।

जब कारमा ऐकांत जड़बा फ़ाड़के के साधक को घेर ले, तन्हाई खाने दौड़े; एकांत मुंहफ़ाड़ ऐसे पल में; उसी लम्हे में-

त्यारे बेरखो साथ आपे, हुं छुं ने! तारी हारे ओगणीस जणा छे; अढार पारा अने ओगणीसमो मेरू। तुं एकलो नथी। ए वखते आपणने बेरखो, आपणुं हरिनाम घेरी वळे; आपणने एकला न रहेवा दे। शुं कहुं? सीदा-सादा शब्दोमां कवि सरल-तरल जाय छे।

सात पेढीथीय ना खूटी सके।

जीवणदास बापा, नारायणदास बापा, प्रेमदास बापा, रघुराम बापा, त्रिभुवनदास दादा, प्रभुदास बापा अने मोरारिबापू, सातेय पेढीमां न खूटे।

सात पेढीथीय ना खूटी सके,
संपदा एवी रळे छे बेरखो।

तो बाप! स्वीकार करना यदि अखंड रस हो जाये तो 'तेजोबिंदु उपनिषद' कहता है, ये स्वर्ग है। दूसरा सूत्र। तीसरा; 'अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डैकरसं धनम्।' अखंड ज्योति, अखंड दीपक जैसे शोभा देता है, उजाला देता है और उनमें जो घृत है, जिसका दीप हो वो रस है। घी खूटे ना, अखंड रस रहे। और ज्योति अखंड रहे स्थूल रूप में उसको उपनिषदकार स्वर्ग कहते हैं। उसको किस रूप में समझे? हमारे ज्ञान की ज्योति अखंड रस में रहे। क्योंकि ज्ञान अखंड नहीं रहता। ज्ञान है दीपक 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकांड' में। आप जानते हैं, ज्ञानदीपक का पूरा प्रकरण है। विवेक की ज्योति अखंड रसमय रहे; ज्वाला नहीं, ज्योति। अखंड प्रकाश; उसके आगे ये सूर्य की ज्योति भी फ़ीकी पड़े ऐसा एक अखंड रस। तो जीवन में विवेक की, समझ की, अच्छी क्वोलिटी, अच्छे शील उसकी एक लौ जलती रहे कायम जिसके जीवन में, उपनिषदकार कहते हैं, वो स्वर्ग है। 'अखण्डैकरसं भोज्यमखण्डैकरसं हविः।' हव्य पदार्थ जो है वो आहूत करने के बाद प्रसाद रूप में जो प्राप्त होता है वो प्रसाद पाने में जिसको अखंड रस आये। प्रसाद का अर्थ ही प्रसन्नता है, प्रसाद मीन्स प्रसन्नता। सीधासादा और सरल अर्थ करो तो परमात्मा को अर्पण किया हुआ भोज्य पदार्थ; प्रसाद लेते समय हम ब्रह्म खा रहे हैं। हरिनाम आहार। जो भोज्य पदार्थ को अखंड रसपूर्वक भोजन करे वो स्वर्ग है, ऐसा 'तेजोबिंदु उपनिषद' का मंतव्य है।

कल कथा में आपने कहा, सुनना फूल है तो फल विवेक है और रस प्रीति है। इस संदर्भ में एक जिज्ञासा है। 'बापू, गोपी और कृष्ण के संदर्भ में गोपियों ने कृष्ण की बांसूरी क्या सुनी कि अपना विवेक खो बैठी। चेतना होती तो विवेक होता पर कृष्ण ने उनका सबकुछ हर लिया था। हां, रस में सराबोर थी और वही रस आंखों के माध्यम से सारे ब्रजमंडल को जलमग्न किये जा रहा था। कृपया स्पष्ट करे। यहां फूल, फल और रस का क्या क्रम है? तो विवेक क्यों नहीं गोपियों में?' गोपियों में बहुत बड़ा विवेक था। मैं एक ही बात कहकर आगे जाऊं कि गोपियों का विवेक ये है कि गोविंद ने कहा था, मैं वृंदावन आऊंगा। उसके बाद गोपी सब समझ गई कि इसका मतलब ये है कि हमें मथुरा जाने का नहीं है। कितना अंतर था? तीस-चालीस किलोमिटर होगा वृंदावन से मथुरा। और कृष्ण ने मत आना, ऐसा नहीं कहा था। यहां गोपियों के विवेक की कसौटी है। मैं आऊंगा इसका मतलब कि हमें जाना मना है। और न गई। एक भी गोपी न मथुरा गई, एक भी गोपी न द्वारिका गई। ये सबसे बड़ा विवेक नहीं है? स्पष्ट न कहा तो भी इसने इसका अर्थ पकड़ा कि हमें नहीं जाना चाहिए।

साहब! मैं आपको वहां तक सुना चुका हूं कभी कि गोपियां तो नहीं गई, गोप बालक नहीं गया है। व्रज की एक गाय, बछड़े भी मथुरा की ओर चरने नहीं गई। मेरे मालिक ने कहा है, वो आयेगा; हम क्यों जाये? इतना ही नहीं, वायु भी उस तरफ़ नहीं जाता था। पवन की लहर भी मथुरा की ओर नहीं जाती। पक्षी भी मथुरा की ओर उड़ते नहीं थे। कभी भूल से मथुरा का मार्ग आ जाये तो पक्षी यू टर्न लेते थे, मुड़ जाते थे। मालिक की आज्ञा। ये बिना विवेक संभव नहीं। बाकी जिसने जो पूछा है, मैं ये कहूं, फूल से फल, फल से रस ये एक प्रक्रिया का क्रम है। ऐसे ही होता है। लेकिन कई फूल को बीच में फल आता ही नहीं। गोपी वो फूल है जिसमें फल नहीं आता, सीधा रस आता है।

तो रस के समय जो विवेक का फल आपको न दिखता हो तो इसका मतलब; गुलाब का फल आता है? प्लीज़ टेल मी। गुलाब फूल है; उसका फल मैंने नहीं देखा। लेकिन उसमें सीधा रस है। गुलाब का इत्र बनता है। उसका फल नहीं। कई साधक ऐसे गति करते हैं कि फल छोड़ो। 'मा फलेषु कदाचन।' कृष्ण तो यही कहते कि वाया फल मत आओ; सीधा रस के धरे में कूदो। सीधा रस। तो ये भी हो सकता है। तो यहां आपको विवेक यदि न दिखे तो ये क्रम परमप्रेम की यात्रा का क्रम है; वहां फल छूट जाता है। हम भी तो कथा कहते हैं, फल कहां चाहते हैं? मुझे कथा का फल क्या चाहिए यार! नको। ईश्वर आकर मुझे साक्षात् कहे, फल दे दूं। मैं मना करूं कि नहीं चाहिए मुझे कोई फल। मेरे कंठ से आपने कथा गवा ली इससे बड़ा फल क्या होगा? इससे बड़ा कौन फल है? इतना रस से तुमने भर दिया दाता! हम तो फूल से सीधा ओवरटेईक कर गये। हर फूल को फल नहीं आता लेकिन फूल में रस होता है; कोई न कोई रस। इसलिए तो इत्र बनता है, औषधियां बनती है, जिससे बीमारियां समाप्त होती है।

'बापू, दूसरी बात आपने कही कि राजा धार्मिक नहीं, धर्मशील होना चाहिए। आपके कल के निवेदन के संदर्भ में एक जिज्ञासा ओर है। धर्म और शील के अनुसार ही प्रेम और शील का पारस्परिक संबंध है? क्या ये अनन्याश्रित है या फिर प्रेम में शील कहां है?' परमप्रेम में कुछ नहीं होगा, ध्यान दो। न शील होगा, न बल होगा, न मन होगा, न बुद्धि होगी, न चित्त होगा, न नियम होगा, न निषेध होगा। कुछ नहीं होगा। लेकिन प्रेम का जो बीचवाला भाग है, मध्यममार्ग जो है प्रेम का वहां तो शील है। प्रेम स्वयं शील का शिक्षक है। प्रेम है टीचर जो हमें शील का पाठ पढ़ाता है। लेकिन आखिरी जैसे आप बिलकुल ऊपरवाले क्लास में चले जाओ तो वहां शील का कोई महत्त्व नहीं है। बाकी प्रेमी शीलवान होता है इसलिए तो गंगासती कहती है, ऐसा साधु जो शीलवान होता है उसको बार-बार चरण छूओ। तो बाप! परमप्रेम में कौन शील? कौन विधि? कौन निषेध? लेकिन धर्म की बात पूछी, राजा धार्मिक नहीं, धर्मशील होना चाहिए। लेकिन धर्मशील का मेरा मतलब है, जो भरत का स्वभाव का शब्द है। चाहिए 'धर्मशील नर नाहु।'

एक फल होता है उसके तीन भाग होते हैं। एक आम का फल ले लो। आम का जो फल होता है इसमें तीन चीज़ होती है। छिलका, गुठली ओर रस। धर्म की 'मानस' में तीन परिभाषा की है। इसलिए मैंने कहा, धर्मशील राजा होना चाहिए, धार्मिक नहीं। जिस-जिस मुल्क में सिर्फ़ धार्मिक राजा है, विशेष धर्म के वो कट्टर हो गये हैं। और इन धर्म की कट्टरता ने हिंसा और आतंक के सिवा कुछ नहीं दिया। तो एक होता है धर्म; एक होता है धर्माभास, धर्म का आभास। और एक होता है धर्म का सार, धर्मबोध। मुझे कहना है तो मैं कहूं, धर्मबोध, धर्मशील। दशरथ में धर्म है; धर्म है अवश्य। भरतजी कहते हैं, मेरे पिता धार्मिक है। लेकिन धर्मशील राजा होना चाहिए। राघवेन्द्र है धर्मशील राजा।

कई लोग रस तो पीते हैं, धर्मसार रस तो लेते हैं लेकिन कई लोग मैंने भी देखा है, आपने भी देखा होगा कि देहातों में गरीबी होती है तो आम बहुत कम खरीद सकते हैं तो जब कोई बाप आम ले आये थोड़ा एक किलो-दो किलो तो उसके बच्चें रस भी चूसते हैं, गुठली भी चूसके एक भी रेसे में रस न रहे। और मैंने देखा है, छिलके भी खा जाय। कई लोग है, रस भी पीते हैं। गुठली भी जरूरी है, क्योंकि वंश बढ़ा रही है। गुठली जो नहीं तो आम्रकुंज खतम हो जाएगा। धर्म भी जरूरी है; कभी-कभी धर्माभास भी जरूरी है, लेकिन श्रेष्ठम् धर्मशीलता उसको 'मानस' कहती है, जो रस पीये। इसलिए वशिष्ठजी कहते हैं, भरत, तू जो सोचता है वो ही कहता है। और जो कहता है वो ही तू करता है।

समुझब कहब करब तुम्ह जोई।
धरम सारु जग होइहि सोई।।

हम धर्म पर रुक जाते हैं; तू धर्मसार तक पहुंच गया। हम छिलके और गुठली में अपना मोह डालकर बैठे हैं! तो धर्मशील का मेरा मतलब है धर्मसार।

यद्यपि तीनों जरूरी है। छिलका, गुठली और रस। लेकिन कोई केवल छिलके में रुक गया; कोई केवल छिलके और गुठली में रह गया; कोई ने तीनों को पाया। कोई केवल अनावश्यक छोड़कर सार्थकता पा गया; ये है धर्मसार। शास्त्रों-धर्म की व्याख्या करने में हम और आप शब्द पर बैठ जाते हैं तो अनर्थ होता है। केवल शब्द पकड़कर प्लीज़, शास्त्रों का अर्थ मत करो। शब्द का अर्थ सद्गुरु से निकलवाओ। ओशो का एक वक्तव्य मुझे कहना चाहिए यहां। ओशो का वक्तव्य है कि सद्गुरु स्वयं जीवित शास्त्र है। ये अलमारी में नहीं रखा जाय; ये आसमां में गमन करता है। ये वासी नहीं, रोज ताजा है। ये पुरातन नहीं, सनातन है। बुद्धपुरुष जीवंत शास्त्र है।

आइए, फिर उपनिषद में कही बात को आगे बढ़ायें। अखंड रस जो भोजन का; ब्रह्म के आहार का, 'जेने सदाय भजननो आहार।' उसी रस का वो स्वर्ग के

लोक की परिभाषा उपनिषदकार बता रहे हैं। 'अखण्डैकरसो होम', आप यदि यज्ञ करते हैं; केवल उसमें घी डाले, पदार्थ डाले ये सब यज्ञ के जो-जो जिसका नियम हो वो करे, लेकिन यज्ञ करते समय, होम करते समय, आहुति देते समय यदि आपको अखंड रस का अनुभव होता है तो वो यज्ञक्रिया स्वर्ग है। बड़े-बड़े यज्ञों का फल स्वर्ग बताया है। एक जगह तो बताया है, आप जानते हैं, युद्ध में निपुण हो उसको भी स्वर्ग का अधिकार प्राप्त होता है। जो युद्ध में निपुण, युद्ध में जो मरते हैं उसको स्वर्ग मिलता है। ये प्रलोभन कृष्ण भी देते हैं अर्जुन को कि जीतेगा तो ये होगा, ये होगा, ये होगा, स्वर्ग प्राप्त करेगा। तो आदमी को यज्ञ करे आदि में उसको अखंड रस हो, उसमें रुचि, उसमें रस आता हो तो वो लम्हें, वो इतनी साधना, उसको स्वर्ग कहा गया है। आगे बोलते हैं, 'अखण्डैकरसो जपः।' ये बहुत सुन्दर बात है। बेरखा लेकर, माला लेकर या कैसे भी आप अकेले बैठे हैं और जप करने में, हरिनाम जपने में यदि अखंड रस आता हो तो उपनिषदकार कहते हैं, वो स्वर्ग का बोध है।'अखण्डैकरसं स्वर्गमखण्डैकरसः स्वयम्।' स्वर्ग स्वयं अखंड रस का रूपक है। तो जहां-जहां मुझे और आपको अखंड रस की प्राप्ति हो वह स्वर्ग है। उपनिषद ने बहुत-सी बातें लिखी; मैं इतने ही सूत्र लिखकर लाया हूं। तो बाप! स्वर्ग की परिभाषाएं मुझे जहां-जहां से मिली वो केवल भूमिदर्शन नहीं है, भूमिकादर्शन है।

स्वर्गलोक का कुछ लक्षण जो है उसमें 'मानस' के आधार पर स्वर्गलोक का एक लक्षण है, वहां कामधेनु गाय रहती है, सुरधेनु; कल्पतरु का भी वर्णन है कि वहां कल्पतरु वृक्ष है; स्वर्ग के जो नंदनवन है, वहां कल्पतरु है और सुरधेनु; आदमी जो चाहे वो देती है देवता की गाय ये कामधेनु। तो तुलसीजी कहते हैं कि उसको किस रूप में मैं पेश करूं? गोस्वामीजी ने बात लिखी कि स्वर्गलोक की कामधेनु जो है वो मेरी दृष्टि में रामकथा ही सुरधेनु है। रामकथा ये कामधेनु गाय है। तुलसी स्वर्ग की व्याख्या करते हैं उसमें वो लिखते हैं, 'रामकथा सुरधेनु सम।' रामकथा सुरधेनु समान है। 'सेवत सब सुख दानि।' उसका सेवन करने से सब सुख देती है। तो किसी ने बाबाजी को पूछा कि वो स्वर्ग कौन? 'सतसमाज सुरलोक सब।' गोस्वामीजी कहे, सतसमाज, सज्जन लोग, सच्चा लोग, साधु लोग, सद्पुरुष उसका जो समाज होता है वो ही स्वर्ग है। 'को न सुनै अस जानि।' रामकथा सुरधेनु है और रामकथा तो संत के समाज में ही हुआ करती है, असंत के समाज में नहीं। तो यहां साधु के समाज को स्वर्ग कहा है। 'सतसमाज सुरलोक सम को न सुनै अस जानि।' जहां सज्जन का समाजरूपी स्वर्ग है वहां रामकथा रूपी कामधेनु गाय है, जो सब सुख देती है। ऐसी रामकथा को कौन न सुने, ऐसा कहकर स्वर्ग की एक परिभाषा 'मानस' अंतर्गत आई, सज्जनों का समाज, साधु समाज ये सुरलोक। अब वो सुरलोक है वहां वो अमृत मिलता है; वो पीने से लोग अमर होते हैं लेकिन अभय नहीं होते। फिर गिरते भी है।

साधु की सभा में जो रामकथा होती है उसमें कथा-अमृत भी होता है, लीला-अमृत होता है, नामामृत होता है, रूपामृत होता है, धामामृत होता है; कभी नष्ट न हो ऐसा अमृत, 'तव कथामृतं तप्त जीवनं' गोपीजनों की बोली में। तो रामकथा इस सुरधेनु संतों की सभा ये स्वर्ग है, वहां ये अमृत है; उसी अमृत का सेवन कथा के अमृत का सेवन वहां किया जाता है। और एक बार स्वर्ग में आदमी पुण्य करके जाता है और जब कमाई पूरी होती है तो लौटा दिया जाता है। लेकिन रामकथा में जिसकी एन्ट्री हुई, हुई, बस। एक्ज़िट है ही नहीं। आपके बस की बात नहीं है। आप कथा सुने बिना रह सको? हां, अपवाद सब जगह होते हैं बाकी जहां तक बहुधा सार्वभौम दृष्टि से एक बार मेरा प्रवेश हो गया गुरुकृपा से, मैं कहां निकल पाऊंगा और किसको निकलना है? आप भी प्रवेश कर गये, आप कैसे निकल पाओगे? यहां से गिरना नहीं है बस! कथा में डूबे रहे, तो ऐसा स्वर्ग सज्जनों का संग है।

'रामचरितमानस' में स्वर्ग की एक ओर परिभाषा करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं-

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं।
तिन्ह समान अमरावति नाहीं।

जहां-जहां राघवेन्द्र ने चरणों से पदयात्रा की वो प्रत्येक चरण के सामने स्वर्ग कुछ नहीं है। जहां-जहां रामचरण गये उसके समान अमरावती नहीं है। बिलकुल सही।

भगवत चरण जहां है; और चरण का अर्थ केवल पदचिह्न ही नहीं; चरण का अर्थ है, जैसे गुजराती में कहते हैं कि एनुं त्रीजुं चरण क्युं? एटले के त्रीजी लीटी कई। पहेलुं चरण क्युं? पछी छेल्लु नामनुं चरण क्युं? छेल्ली पंक्ति कई? तो उसको भी चरण कहते हैं। भगवान राम का चरण मानी भगवान राम का सूत्र जहां-जहां जिसको हृदय में बैठ गया है उनके समान अमरावती भी नहीं है। जिसने 'मानस' की कोई चौपाई अपने हृदय में बिठा ली उसके सामने अमरावती तुच्छ है। तो ये भी स्वर्ग की एक व्याख्या 'मानस' अंतर्गत है। और-

रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत।।

भगवान लक्ष्मण और सीता सहित पर्णकुटी में रहते हैं मानो इंद्र स्वर्ग में बैठा हो 'सची जयंत समेत'; एक रूपक। जैसे इन्द्र स्वर्ग में रहता है; सची उसकी पत्नी है; जयंत उसका बेटा है। पर्णकुटी में राम जब बिराजमान है तो तुलसी कहते हैं, भगवान मानो अमरपुर में, स्वर्ग में बैठे हैं और स्वयं इन्द्र है। यहां इन्द्र ईश्वरवाचक है। वेद का इन्द्र जैसे ईश्वरवाचक है उसी अर्थ में राम ईश्वर। इन्द्रियों के देवता को भी इन्द्र कहते हैं; लेकिन यहां केवल इन्द्रिय के देवता नहीं है। यहां सभी इन्द्रियों का मालिक बैठा है उसी इन्द्रोत्तम पद है ये, जिसको 'गीता' ऋषिकेश कहती है। अथवा तो ऋषिकेश का अर्थ है इन्द्रियों का ईश, मालिक; जो कृष्ण के बारे में कई नामावली आती है उसमें ऋषिकेश भी है।

तो बाप! भगवान वहां वन में है। वन हो कि भवन लेकिन साथ में सीता हो, भक्ति हो; साथ में वैराग्य हो और परमविवेक रामभद्र हो तो वो भवन में रहे या कहीं भी, स्वर्ग ही तो है। 'जो जन रखे विषय रस।' 'दोहावली रामायण' में तुलसी का दोहा सुनिए, 'जो जन रखे विषय रस।' जो सावधान विषय रस से निकल गया और 'जितने राम सनेह' राम के स्नेह में पक गया, स्नेहाल राम के स्नेह में वो डूब गया। तुलसी कहते हैं, वो राम को बहुत प्रिय है। 'कानन बसहुति' ये फिर घर में रहता हो तो भी ठीक और वन में रहता हो तो भी ठीक है। वो राम ऐसे अपनी कुटिया को अमरपुर बनाते हैं। अपना रहना क्या बनाना अपने हाथ में होता हैं। मंगल भवन करना कि कोप भवन करना अपने हाथ की वस्तु है। तो स्वर्ग की कई व्याख्या गोस्वामीजी के 'मानस' और अन्य ग्रंथों में जो-जो गुरुकृपा से उपलब्ध होती है, मैं आपके सामने पेश किये जा रहा हूं।

'बापू, एक जिज्ञासा बहुत दिनों से है। रावण जो बहुत तपस्वी है। ब्रह्म एवं शिव से वरदान प्राप्त किये हैं कठोर तपस्या से। पर एक बार माँ सीता को हरण करने से पहले वो कहता है, इस शरीर से भजन नहीं हो सकता। तो बापू, भजन एवं तपस्या में क्या अंतर?' बहुत अंतर है। तपस्या एक साधना है; भजन केवल साधना नहीं है, भजनानंदी का स्वभाव है। तपस्या भिन्न है। तपस्या के फल भी भिन्न है। तपस्या कठोर होती है; भजन प्रेमपूर्ण होता है। तपस्या रूखी-सूखी बना देती है; भजन आदमी को रसिक बनाता है। तपस्या आदमी को कभी-कभी विकृत भी कर देती है; भजन आदमी को प्रेम संपृक्त रखता है। तपस्या अभिमान को निमंत्रण देती है और भजन आदमी को रांक बनाता जाता है। 'भक्ति रे करवी ऐने रांक थईने रहेवुं।' तो मेरी दृष्टि में बहुत फ़र्क है साहब! बड़े-बड़े योगी भी तपस्या करके राम में लीन है। ये भी एक मार्ग है, अवश्य मार्ग है लेकिन भजन करनेवालों में लीन नहीं होना है। मैंने कई बार कहा कि साकर खावामां जे आनंद आवे ई साकर थई जवामां आनंद नथी। भजन तो एक रस है निरंतर। तपस्या भी लोगों को प्राप्ति का कारण बन सकती है, कोई आपत्ति नहीं।

उपनिषद कहता है, हम हर घटना को स्वीकारना सीख लें तो ये पल तुम्हारा स्वर्ग है। अब इससे ओर स्वर्ग की दिव्य परिभाषा क्या हो सकती है? हमारी मुश्किल यही है। हम तत्क्षण इस पल को नहीं कुबूल कर पाते। महान से महान अखंड रस है स्वीकृति–स्वीकार, ये स्वर्ग है। फिर सूत्र बना लो, स्वीकार स्वर्ग है, अस्वीकार नर्क है। यार! आप लाख मेहनत करे, प्रयत्न करे, बिना स्वीकार कोई चारा नहीं है। कुबूल करना पड़ता है। जितने अवतार हुए और जितने बुद्धपुरुष हुए, हम सब उससे सीख लें।

कथा-दर्शन

- भगवद्कथा से आदमी के अहंकार की मात्रा कम होती है।
- भजन केवल साधना नहीं है, भजनानंदी का स्वभाव है।
- तपस्या कठोर होती है; भजन प्रेमपूर्ण होता है।
- भक्ति पाने के लिए, शक्ति पाने के लिए, शांति पाने के लिए थोड़ा अंतर्मुख होना जरूरी है।
- धर्म की कट्टरता ने हिंसा और आतंक के सिवा कुछ नहीं दिया।
- किसी परम व्यक्ति के अंतिम समय की सेवा मिले उसके समान बड़भागी कोई नहीं।
- बुद्धपुरुष सबसे श्रेष्ठ कोना है, जिसकी गोद में सर रखकर रोये।
- हमारे सद्गुरु ही हमारी नियति है।
- समन्वयकारी संत स्वर्ग है।
- मन में शांति हो, तन में रोग न हो, भवन में कलह न हो वो स्वर्ग है।
- अनावश्यक वस्तु का विवेकपूर्ण परित्याग ये समग्र स्वर्ग है।
- जिस स्थान में विशुद्ध आनंद की प्राप्ति हो वो ही स्वर्ग है।
- स्वर्ग भूमि नहीं है, स्वर्ग भूमिका है।
- घर में कितने सुख-सुविधा हो, साधन हो लेकिन मन की शांति नहीं तो कुछ भी नहीं।
- त्याग का अमृत रहता है विरति की अवस्था के पात्र में।
- संगदोष बड़ों-बड़ों के पतन का कारण बनता है।
- सर्वोच्च आश्रय है नियति का आश्रय।
- एकांत आंतर-गमन का रास्ता है।
- तीन वस्तु-कृपा, क्षमा और वरदान मिले उसका दुरुपयोग नहीं करना।
- आदमी अपने क्षेत्र में जितना अधिक श्रेष्ठ इतनी ज्यादा उसकी समस्याएं होती है।
- हमारी यात्रा फूल तक रुकनी नहीं चाहिए, फल तक जानी चाहिए, रस तक जानी चाहिए।

मानस
स्वर्ग
९

स्व की ओर गति करना ही स्वर्ग है

आइए, वो अयोध्या के राजदरबार में जहां गुरु बिराजमान है, जहां मुनिगण बिराजमान है; वहां विद्वत्जन बिराजमान है, नगरजन बिराजमान है; वहां मातायें उपस्थित है कि नहीं, लिखा नहीं है। लेकिन मुझे मेरे दादाजी कहा करते थे कि बेटा, वहां जब राम बोलनेवाले थे तो माँ कौशल्या ने जिज्ञासा की थी कि यदि मर्यादाभंग न होता हो तो हम उस सभा में आ सकते हैं? और वशिष्ठजी को पूछा गया। और 'आचार्यदेवो भव।' उसने अनुमति प्रदान की क्योंकि कोई ये न समझे कि मातायें राजसभा में नहीं आ पाती। दशरथजी की मृत्यु के बाद जो राज्यसभा मिली है उसमें मातायें उपस्थित है। जो एक बहुत गंभीर चर्चा चली उसमें मातायें भी सरीक है; उसमें वो हिस्सा ले रही है। तो भगवान राम बोलनेवाले हैं तो उस समय मातायें भी रघुकुल की मर्यादा के अनुकूल उपस्थित है। और भगवान कपिल को यदि माँ देवहुति सुन सकती है तो भगवान राम को कौशल्या भी सुन सकती है। तो सब बिराजमान थे और प्रभु ने अपना वक्तव्य शुरू किया कि मैं जो बोलूं वो सुनकर आपको जो अच्छा लगे वो करियेगा। मेरे मुख से यदि कोई अनीति निकल जाये तो भय छोड़कर मुझे बीच में रोक देना और मेरे प्रभाव में मत आना। आप अपने ढंग से सुनियेगा। ऐसा राघव का वक्तव्य, उसीके अंतर्गत ये पंक्ति प्रभु के मुख से निकली है-

एहि तन कर फल बिषय न भाई।

इस शरीर का फल विषय नहीं है। स्वर्ग भी आखिर में अल्प है और अंत में दु:खदाता है। फिर भक्ति और सज्जनों की चर्चा करते हुए राम ने कहा 'स्वर्ग' शब्द यूझ करते हुए-

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।
तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।

कौन है महान? जो सदैव सज्जनों के संसर्ग में रहता है। नौ लक्षण है स्वर्ग की प्राप्ति के। इनमें से एक लक्षण है सज्जन संसर्ग; सज्जनों का संग। मुझे कल एक युवक पूछ रहा था कि बापू, 'स्वर्ग' शब्द में 'स्व' और 'ग' है तो उस शब्द को लेकर हमें कुछ कहे। उस समय तो मैंने नहीं कहा लेकिन उस बात को मैं यहां उठा रहा हूं। 'स्व' का अर्थ है हम स्वयं, हमारा स्व। और 'ग' का अर्थ होता है गच्छ, गच्छन्ति। सीधासादा बिलकुल अर्थ यदि किया जाये तो स्व की ओर गति करना ही स्वर्ग है। पर की ओर गति नहीं, स्व की ओर गति। मैं और आप गुरुकृपा से, आचार्यों की कृपा से, शास्त्रों की कृपा से, संतों की कृपा से, आत्मकृपा से, इवन अस्तित्व की कृपा से जितने अंदर जा सके। हमारा गमन कहां हो? ग मानी गमन स्व की ओर। बहिर्गमन नहीं, आंतर-गमन। दूसरों के प्रभाव में नहीं, अपने स्वभाव में जीना। हम कितने परवश हैं? मेरा और आपका भगवद्कथा का, कोई भी शास्त्र का श्रवण, मनन, निदिध्यासन, स्वाध्याय, प्रवचन करते-करते यदि स्व की ओर हमारा गमन शुरू हो जाये तो ये स्वर्ग का पंथ हो जाएगा। हमारी भटकन बहिर् है।

तो आंतर-गमन करने के लिए, हमारा निज स्वर्ग जो है उसी स्वर्ग की ओर, उसी स्व की ओर गमन करने के लिए नौ सूत्र है। इनमें एक सूत्र है, 'प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।' सज्जनों का संग। बुद्धपुरुषों के पास बैठना। बोल-बोल नहीं करना। पहुंचे हुए फ़कीरों के पास बैठना स्वर्ग है; उसके अणु-परमाणु, उसके वाईब्रेशन में जीना स्वर्ग है। क्यों लोग आज भी निझामुद्दीन ओलिया की कब्र के पास चुपचाप बैठकर रोते हैं? क्योंकि वहां से कुछ मिल रहा है।

मेरे भाई-बहन, हम चर्चा कर रहे हैं, आंतर-गमन भीतरी प्रवेश कैसे हो सकता है, उसका एक सूत्र है 'सज्जन संसर्गा।' हम कथा में होते हैं, अधिकतम बहिर्मुख भी हो जाते हैं, नहीं होते ऐसी बात नहीं। लेकिन हमारा गमन अंदर की ओर शुरू हो जाता है। दूसरा सूत्र है, एकांत। एकांत आंतर-गमन का रास्ता है। शुरू-शुरू में एकांत आदमी के मन को बहुत बहिर्मुख भी करने की कोशिश करता है अवश्य। क्योंकि मन को बहुत आदत है ये। लेकिन बहुत शरारती बच्चे के ऊपर आप ध्यान न दो; बहुत उधम मचाता है, लेकिन आप ध्यान ही न दो, रोको-टोको ना तो

अपने आप घंटे में थक कर सो जाएगा। मन भी कभी-कभी शरारती है, उधम करता है, साधक उस पर गौर न करे और एकांत बरकरार रखे तो धीरे-धीरे वो अपने आप थक कर सो भी सकता है। अनुभव करने का सवाल है। एकांत बहुत फायदा देता है। प्रयोग करने जैसा है। कभी थोड़ा समय मिले, अकेले रहो। व्यवहार निभाना। धीरे-धीरे आंतर-गमन करो। और न हो तो कहां पैसे खर्चे है? नहीं हुआ तो नहीं। मनोरथ तो करो एक बार एकांत का।

तो कहने का मतलब एकांत। मुझे एकांत रास आता है। इसका मतलब मैं कोई पहुंच गया हूं ऐसी बात नहीं प्लीज़, ये मेरा स्वभाव बन गया। अकेले रहना मेरा स्वभाव है। कई लोग कहते हैं, बापू जहां रहते होंगे वहां तो कितने मिलते होंगे? हम तो मिल नहीं पाते। पूछो इन लोगों को, मैं किसीको मिलता नहीं। मेरे कमरे में बैठा रहता हूं। खाने के लिए बाहर आता हूं। मेरे यज्ञयाग के लिए बाहर आता हूं। इसका मतलब मैं नहीं मिलता ऐसा भी नहीं। लेकिन स्वभाव। एकांत में भीतर गमन का रास्ता खुलता है, ऐसा मेरा थोड़ा गुरुकृपा से अनुभव है। आप भी अनुभव करिएगा।

तो एक उपाय है स्व-गमन का एकांत। दूसरा उपाय; ये भी मेरा थोड़ा गुरुकृपा से अनुभव है, मौन। मौन आदमी को अंदर लिये जाता है। मौन से बहुत फायदा होगा। शुरूशुरू में तकलीफ़ होगी जरूर। हम क्या सोचते हैं ये सामनेवाला नहीं समझता तो मौन में बोध नहीं रहता, क्रोध आता है। शुरूशुरू में तो मौन रखनेवाला इशारा करता है। मौन बड़ा आंतर गमन का रास्ता है। लाओत्सु ने कहा था, आप बोलो और बोलना शुरू करो ही सत्य की मात्रा कम होने लगती है। ये घाटे का सौदा है। महापुरुष लोकसंग्रह के लिए बोले। महापुरुषों ने इतने ग्रंथों का सर्जन किया हम जीवों के लिए; बाकी उनका स्वभाव मौन होता है। मुखरता बड़ा दोष है।

एक तो सज्जन संसर्ग। दूसरा है एकांत। तीसरा है मौन। चौथा रास्ता है स्वगमन का अंदर जाने का वो है बड़ा सरल रास्ता। हम सब कर सकते हैं; इसमें कोई विशेष होने की जरूरत नहीं। मैंने 'गीता' का ही आश्रय किया था और आज भी करूं इसलिए वो श्लोक मुझे याद आ गया-

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनिष्ठा विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञैः गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

किसका संग करना, किसका न करना, अपने विवेक से निर्णय करना। संगदोष बड़ों-बड़ों के पतन का कारण बनता है; बहिर्मुख कर देता है सबको। मैं 'मानस' के आधार पर से समझाऊं तो संगदोष कितना आदमी को बहिर्मुख कर देता है, आप सोचिए। कैकेई भरत की माँ है। भरत 'रामचरितमानस' में संत शिरोमणि है, भगत शिरोमणि है। भरत जैसे एक परम संत को जनम दिया उस माँ कैकेई की बुद्धि भी मंथरा का संग दूषित कर देती है। कैकेई की बुद्धि भ्रष्ट कर दी यार! हावी हो गई मंथरा।

तो बाप! कैकेई में ये कचरा है। यद्यपि कैकेई बहुत राम को प्रेम करती है; दूसरा जनम मुझे मिले तो राम जैसा बेटा हो, सीता जैसी पुत्रवधू हो, ऐसी कामना भी करती है, लेकिन ये ऊपर-ऊपर; नीचे कचरा पड़ा है और इस कचरे के कारण मंथरा की सोहबत उसको बदल देती है। संगदोष का बहुत ध्यान रखना चाहिए। कैकेई जैसी माता। तो एक ही नगर में दोनों बसे। इतना बड़ा संत भी अयोध्या में और इतनी बड़ी असंत भी अयोध्या में। दोनों अयोध्या में और दोनों के लक्षण एक जैसे है।

संत सहहिं दु:ख परहित लागी।
पर दु:ख हेतु असंत अभागी।

तुलसी कहते हैं, साधु दु:ख सहन करते हैं दूसरों के कल्याण के लिए कि उसका शुभ हो, मंगल हो। और असंत है वो दु:ख सहन करे कि दूसरा कैसे पीड़ित हो। दूसरा कैसे दु:खी हो इसलिए वो दु:ख सहन करे। मंथरा उसमें आती है कि दूसरा कैसे पीड़ित हो। भरत उसमें आता है कि कोई पीड़ित न हो इसलिए वो खुद। 'अयोध्याकांड' में दोनों के लक्षण एक समान है। भरत और मंथरा के दोनों के लक्षण एक है। संत-असंत लेकिन दोनों दु:खी है। एक दूसरों के दु:ख के लिए दु:खी है, दूसरा दूसरे का सुख नहीं देख पा रहा इसलिए दु:खी है। दोनों दु:खी। साधु-असाधु दोनों दु:खी है। संत और असंत में यही फ़र्क; दोनों दु:ख देनेवाले ही है; यहां दोनों दु:खी होते हैं। फ़र्क इतना कि साधु जाय तब दु:ख देता है और दुर्जन आये तब दु:ख देता है।

बाप! साधु का दिल भी जलता है और असाधु का दिल भी जलता है; लक्षण एक। भरत साधु, उसका दिल कैसे जलता है? 'राम लखन सिय बिनु पग पनहीं।' भरत सोचते हैं, मेरा लक्ष्मण, मेरा राम, मेरी माँ जानकी

खुले पैर वन में भटकते हैं। इसी पीड़ा से मेरा दिल जलता है। और मंथरा क्या कहती है? 'राम तिलकु सुनि भा उर दाहू।' यहां भरत भी सुलग रहा है। यहां मंथरा भी सुलग रही है। भरत सुलग रहा है, उसकी छाती सुलग रही है, मेरा राम नंगे पैर भटक रहा है और यहां राम को राज मिल गया हैं। दोनों को तुलसी किस रूप में प्रस्तुत करते हैं! संत-असंत को। थोड़ा इसलिए कहूं कि सोहबत किसकी करनी वो विवेक आ जाये, क्योंकि दोनों के लक्षण कभी-कभी एक जैसे दिखते हैं। कभी-कभी तो संत ज्यादा प्रभावक होता है और हम चुक जाते हैं। कैकेईजी, मंथरा कहती है, हे भामिनी, जब से आपका बुरा मैंने सुना है ना, मुझे दिन में भूख नहीं लगती और रात में मैं सो नहीं पाती। और भरत कहते हैं-

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती।
भूख न बासर नींद न राती।।

मुझे दिन में भूख नहीं लगती रात को नींद नहीं। दोनों एक समान जा रहे हैं। समांतर जा रहे हैं। यही है 'रामचरितमानस।' ओर दृष्टांत दूं। मंथरा भी बहुत बड़ी कथाकार है और मेरा भरत भी बड़ा कथाकार है। दोनों कथाकार है; कथा कहते हैं। भरत माताओं के पास श्रुतिपुराण की कथा कहते हैं, शोक निवारने के लिए। माताओं को ढ़ाढ़स देने के लिए और मंथरा कथा करती है विरोध पैदा करने के लिए। दोनों कथा कहते हैं। भरत है भगत शिरोमणि और मंथरा है कपट शिरोमणि। तुलसी कहते हैं, भगत शिरोमणि भरत है और ये कपट शिरोमणि; दोनों जगह 'मणि' का शब्दप्रयोग। आप कल्पना तो करो!

तो हम चर्चा कर रहे हैं, स्व की ओर गमन, उसीका नाम है स्वर्ग। और उसका ये चौथा सूत्र है, आदमी संग का ध्यान रखे। पांचवां सूत्र; हमारी चर्चा उस महात्मा से हो रही थी और वो महात्मा भी कुछ सूत्र बोले जा रहे थे। मैंने भी अपने ढंग से कुछ कहा उसी समय। उस महात्मा ने कहा कि इसी श्लोक से मुझे आंतर-गमन की प्रेरणा मिलती है और वो उसने कहा, सुख-दुःख ये जो द्वन्द्व है उसमें जो स्थिर रह सकता है। व्याख्या मैं कर दूं, बहुत आसान है, लेकिन हम सब एक जहाज के यात्री है। सुख-दुःख में सम रहना आंतर-गमन का रास्ता है; बहुत कठिन है।

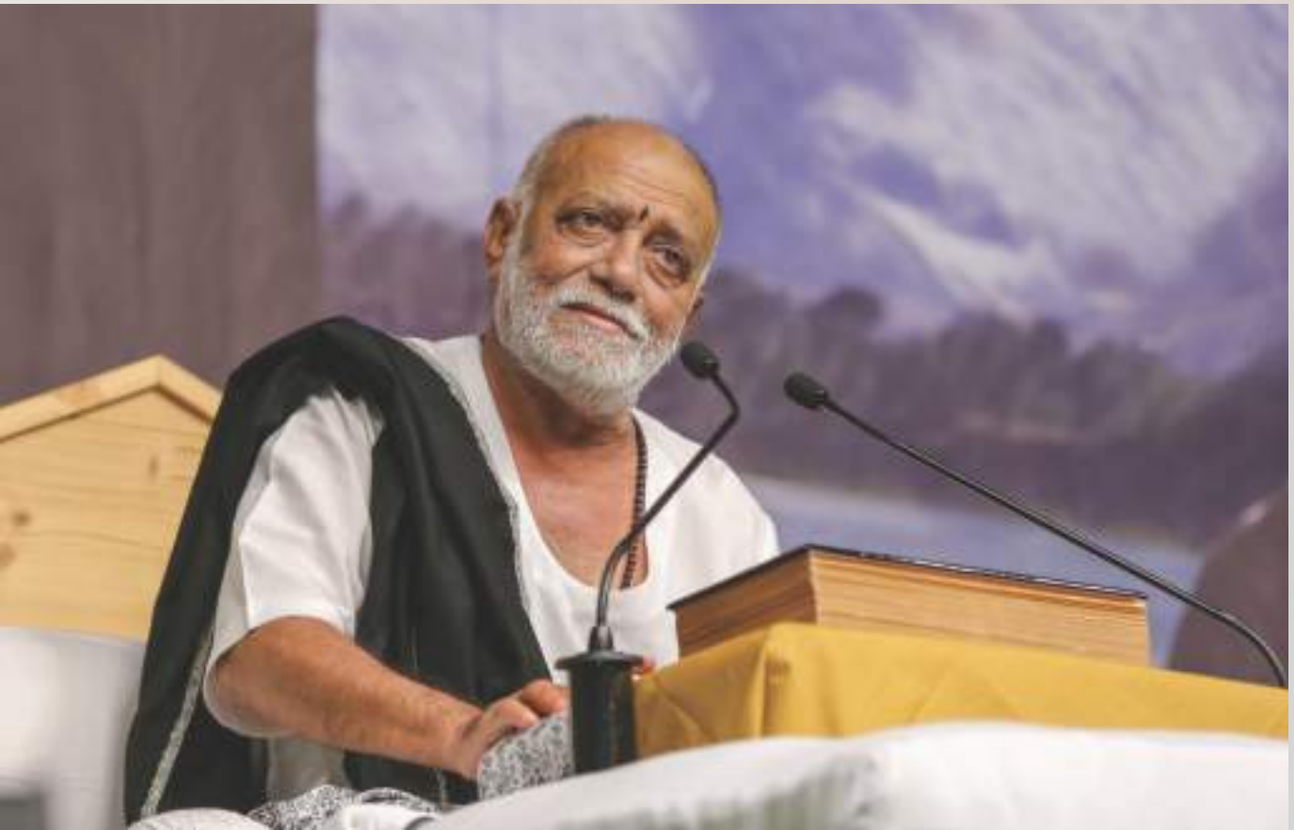

छठ्ठा सूत्र उस समय आया था वो है, दूसरों का कुछ उधार लेकर मत जीना। अपना जीवन स्वाभाविक रखना। शोभित देसाई की एक गज़ल का मत्ला है-

आपणे पोतानुं जीवन धन्य थईने जीवीए।
शाने माटे आपणे को अन्य थईने जीवीए।

जिसको अपनेआप में संतोष नहीं है वो आंतर-गमन नहीं कर सकता। हम भटक रहे हैं! क्यों महाप्रभुजी ने अन्याश्रय पर इतना बल दिया है? क्या दूसरे को तुम वंदन करो इससे महाप्रभुजी नाराज हो जाये? इसकी गहराई पकड़नी चाहिए कि तुम भटको ना। तुम दूसरों के प्रभाव में आकर तुम्हारी जो गति है ये मत चुको। इसी अर्थ में। मेरे तुलसी ने भी 'अनन्य' शब्द उठाया। 'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।' ये अनन्य है। हमारी सबकी एक मानसिकता हो गई कि हम दूसरे जैसे बन जाये! असली वस्तु को पकड़कर उसके प्रकाश में हम और आप अपने खुद को देखे बस; दूसरे जैसे होने की कोई जरूरत नहीं। कोई बुद्धपुरुष के चरण में बैठकर हम 'अप्प दीपो भव।' बन जाये। अपने आप को खोजे कि हम दूसरा नहीं होना चाहते, लेकिन इसके लिए कोई प्रकाश चाहिए जो हमें आलोकित करे; जो हमें ये बताये; ये जरूरी है। हम बिना सोचे दूसरा बनने की चेष्टा में है; उसीमें लगे हुए है!

आगे का सूत्र आता है और वो है बहिर्गमन के सुख-दुःख, बहिर्गमन के हानि-लाभ हमने महसूस किये हैं ठीक है, लेकिन आंतर-गमन में क्या होगा वो निश्चित नहीं है। उसीके लिए हमें भय लगता है अंदर जाने में। इसलिए अंदर जाने के लिए चाहिए कोई बुद्धपुरुष की कृपा से निर्भयता। ये निर्भयता के बिना हम आंतर-दर्शन नहीं कर पाते; हम भीतर नहीं जा पाते। ये अत्यंत जरूरी है। जिसको भगवद्गीताकार 'अभयं' कहते हैं। अभयं ये आवश्यक है, क्योंकि अंदर जाने में बहुत डर लगता है साहब! और अभय आता है सत्य से। बिना सत्य अभय आ नहीं सकता, ये भी इतनी पक्की बात है। मैं तो उस पर ठान कर बैठा हूं। अभय सत्य के बिना कभी नहीं हो सकता। तो एक ये सूत्र की भी चर्चा तब हुई थी कि अभय चाहिए अंतरयात्रा के लिए। और आगे का सूत्र आया था कि पूर्ण विश्वास चाहिए। इसको महाप्रभुजी कहते हैं, 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।' पूर्ण भरोसा; पूरा भरोसा। लोग कहते हैं, कितना भरोसा रखें? कब तक रखें? विश्वास कितना रखें? ये प्रश्न ही बेकार है। भरोसा मानी भरोसा, विश्वास मानी विश्वास। मेरे तुलसी का एक पद है, 'विश्वास एक राम-नाम को।' केवल एक विश्वास।

तो मुझे लगता है कि भीतरी यात्रा, भीतरी स्वीकार के लिए विश्वास बहुत जरूरी है, बहुत जरूरी है। ये एक सूत्र की भी उस समय चर्चा हुई थी। एक और सूत्र की चर्चा हुई थी और वो थी, आदमी कामनाओं से जितना मुक्त इतना आंतर-गमन कर सकता है। वो भी 'गीता' का ही सूत्र, 'विनिवृत्तकामाः।' जितनी कामनाओं से आदमी निवृत्त इतना वो आंतर-यात्रा कर सकता है। जरूरी कामना करनी चाहिए अवश्य। लेकिन जिसको भीतरी स्वर्ग की प्राप्ति करनी है उसके लिए ऐसे कुछ सालों पहले ज्ञान गुदड़ी में हुई चर्चा मेरी स्मृति में आई और कल मुझे ये बात एक युवान ने पूछा कि बापू, स्वर्ग की क्या व्याख्या? इसी अर्थ में आपसे बातें करने लगा 'मानस-स्वर्ग।'

तो केन्द्रस्थ विषय जो है 'मानस-स्वर्ग' उसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हम और आप संवाद के रूप में कर रहे हैं। थोड़ा कथा का क्रम उठाऊं लेकिन इससे पहले कुछ आपकी जिज्ञासाएं जो है वो है उठाऊं। ''बापू, कल आपने कहा कि परमात्मा भी नियति के सामने बलवा नहीं करती। आखिर ये नियति है क्या? नियति मानी क्या? प्रारब्ध, भाग्य, नियति क्या ये सब पर्यायवाची शब्द है? क्या नियति से परे कुछ नहीं? हमारे सारे कर्म नियति की परिधि अंतर्गत ही घूमते रहते हैं? बापू, नियति का उल्लेख प्रायः नकारात्मक रूप में होता है। यदि नियति ही हमारे वर्तमान की निर्माता है तो सकारात्मक भी क्यों नहीं? नियति का निर्माता कौन है? बापू, नियति क्या केवल हिन्दु धर्म अनुयायीओं का दर्शन है जो पुनर्जन्म में मानते हैं या सार्वभौम मान्यता है? बापू, कृपया नियति का विवेचन करे। बापू, नियति के विषय में कुछ नहीं जानते, कृपा करो।'' नियति यानी एक ही चौपाई में तुलसी ने कहा है-

राम कीन्ह चाहहि सोइ होई।
करै अन्यथा अस नहिं कोई।

भगवद्इच्छा जिसको आचार्यचरण कहते हैं।

होइहि सोई जो राम रुचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।

कर्तुतत्त्व में अहंकार प्रधानता आ जाती है। नियति की गंगा में हम बह नहीं पाते। जो बहना सीख जाये नियति की गंगा में उसके लिए न कर्म बोझ है, न कर्म फल है। वो इस दोनों से परे हो जाता है। इसलिए इसको समझाना मेरे लिए मुश्किल है लेकिन मैं इतना ही भरोसा दिलाना चाहता हूं कि भाग्य, प्रारब्ध और नियति पर्यायवाची नहीं है; ये सगोत्री शब्द नहीं है। ये क्रमशः ऊंचाई है और नियति सर्वोच्च शिखर है। जहां जीव छू नहीं सकता। लेकिन शंकर ने भी नियति को कुबूल किया क्योंकि सर्वोच्चता है नियति। भगवान कृष्ण को कोई मार सकता है? जो 'गीता' में कहते हैं, अमृत भी मैं हूं, मृत्यु भी मैं हूं। उसको कौन मार सकता है? लेकिन नियति का स्वीकार करते हैं। यद्यपि ये प्रश्न बड़ा विकट है। जिसने पूछा है वो विद्वत्तापूर्ण पूछा है। बहुत अच्छा प्रश्न पूछा। मैं उसकी समझ के लिए नमन करूं।

मैं आगे बढ़ूं इससे पहले ये जो ज्ञान गुदड़ी की चर्चा चली उसमें आठ सूत्र; एक बात बाकी रह गया और ये कीर्तन करते-करते याद आया। आप बेरखा या माला पर किसी मंत्र या भगवान का नाम जप करे तो ये बहिर्मुखता नहीं है; ये स्व के प्रति गमन है। तो उस महात्माजी ने मुझे बताया था नौवां जो सूत्र है स्वर्ग का वो है हरिस्मरण करते-करते अंतर्मुखता। तो हरिनाम स्मरण; प्रभु का नामस्मरण। मैं बार-बार कहता हूं, दोहराता रहता हूं, रहूंगा कि ये किसी विषय पर गुरुकृपा से, संतों-आचार्यों की कृपा से बातचीत आपसे कर ले बात ओर है लेकिन अंततोगत्वा आखिरी वस्तु वो है हरिनाम। प्रभु का नाम ये आखिरी वस्तु है। चारों युग में, चारों वेद में गोस्वामीजी कहे, नाम का प्रभाव अकाट्य रहा है। और मैं युवान जगत को तो इतना ही कहता रहता हूं कि तुम खूब घूमो-फिरो, पढ़ो-लिखो, खूब आगे बढ़ो बाप! अच्छे कपड़े पहनो, भारतीय संस्कृति का निर्वहन करो। ठाकुरजी को निवेदन कर सको वैसा प्रसाद पाओ। ये सब करो। और रात में जब सोने जाओ; टी.वी. देख लो; चलो, SMS जो करना है कर लो, लेकिन जब आपको लगे कि अब कोई कर्म शेष नहीं है और उसी समय भी नींद न आये तो अपने बेड पर अपने इष्ट का पांच मिनट स्मरण करो। केवल पांच-सात मिनट हरिस्मरण। मैंने बड़े-बड़े पहुंचे हुए महापुरुषों से भी यही पाया कि आखिर में सब कहते हैं हरिनाम।

आइए, हम कथा का थोड़ा दौर लें। भगवान राम को यज्ञरक्षा के लिए याचना करने के लिए विश्वामित्रजी अयोध्या की यात्रा करते हैं। 'मानस'कार विश्वामित्र का परिचय देते हुए बोले, ये महामुनि है और ज्ञानी भी है। शुभ स्थान देखकर आश्रम में निवास करते हैं बक्सर में, सिद्धाश्रम में। विश्वामित्रजी जप भी करते हैं, विश्वामित्रजी यज्ञ भी करते हैं और विश्वामित्रजी योगा भी करते हैं। लेकिन वो थोड़े डरे-डरे रहते हैं मारीच और सुबाहु के कारण। जब-जब यज्ञ अनुष्ठान शुरू होता है और जप करने बैठते हैं तो मारीच और सुबाहु बाधा डालते हैं। कोई भी मंगल अनुष्ठान में कोई विघ्न आये तो ये विघ्न विघ्न है कि प्रभुप्राप्ति के मार्ग में सहायक है, किस रूप में लोगे उसे? इस प्रसंग को देखते तो लगता है कि मारीच-सुबाहु बाधा डालते हैं। बार-बार यज्ञ बंद रहता है। जप नहीं कर पाते, योगा नहीं कर पाते और डरे-डरे रहते हैं महात्मा। और इसी कारण जिसको लोग विघ्न कहते हैं वो ही विघ्न विश्वामित्र के लिए राम की प्राप्ति का कारण बना। ये नहीं होता तो विश्वामित्र बिलकुल निकट बसी अवध में कभी जाते नहीं। ये घटना नहीं घटती तो विश्वामित्रजी राम की याचना न करते। राम को पाते नहीं और राम के द्वारा एक पूरा लंबा अभियान, वैश्विक अभियान चलनेवाला था वो रुक जाता।

मैं ये जरा ऊलटा दर्शन इसलिए आपके सामने बोल रहा हूं, मैं आपको एक ढ़ाढ़स देना चाहता हूं कि कभी-कभी लोग कहते हैं कि इतना हम मंगल-मंगल उत्सव कर रहे थे और कहां से विघ्न आया! विघ्न को भी पता है कि जाना कहां चाहिए। अमंगल में विघ्न नहीं जाता। विघ्न को भी अपने को शुभ करना है इसलिए मंगल में ही जाता है। तुम दर्शन बदलो, प्लीज़। कोई बड़े महापुरुष को बीमारी क्यों होती है? बीमारी चाहती है कि मैं उसको छूऊं। रमण को केन्सर, मेरे दिमाग में बात बैठती नहीं है; जो कईयों का केन्सर मिटानेवाला बादशाह। ठाकुर रामकृष्ण को केन्सर की इतनी पीड़ा, जिसके साथ माँ काली रूबरू चर्चा करती थी! तो उसको जरा सकारात्मक सोचो। मैं इतने सालों से कथा कह रहा हूं। कई बार ऐसा होता है, कथा में मंडप गिर जाता है। कथा में इतनी बारिश हो जाती है। एक-दो दिन कथा बंद रखनी पड़ी। मैंने कथा में देखा कि सुनते-सुनते किसी की डेथ भी हुई है ना! कोई बुज़ुर्ग, कोई ठंडी में ठिठुर गये, डेथ हो गई फिर उसी तीर्थ में हम उसका संस्कार भी कर देते हैं। अब लोगों को समझाना मुश्किल है क्योंकि लोगों की संवेदनाएं, हम सामान्य बुद्धि से जीनेवाले सोचते हैं, अरर! विघ्न आ गया! नहीं, विघ्न नहीं; अमंगल मंगल के पास जाना चाहता है।

तो विश्वामित्र के यज्ञ में इन लोगों के द्वारा जो बाधा डाली जा रही है ये विश्वामित्र के लिए तो एक रास्ता खोल गई। वर्ना विश्वामित्र जिसका जप कर रहे हैं, जिसके लिए योगा कर रहे हैं, जिसके लिए यज्ञ कर रहे हैं वो परमतत्त्व तो ओलरेडी दशरथ के घर पढ़-लिखकर के कुमार हो चुके हैं। और विश्वामित्र कभी नहीं जाते। यदि ये न होता तो? भजन सच्चा है तो विघ्न भी सहायक बन जाता है। 'सुन्दरकांड' का पारायण आप रोज करते हैं और आप उसका पाठ तो करते हैं लेकिन मनन करे। अल्लाह करे, किसी के जीवन में ऐसी घटना न घटे लेकिन घटे तो यही 'मानस' की 'सुन्दरकांड' की पंक्तियों आप बार-बार जपो-

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई।।

लोग कहते हैं, हम भजन करने बैठे और विघ्न आया। विघ्न आता है तेरा भजन देखने के लिए। उसको भी तो इच्छा होती है कि मैं इसके पास जाऊं। इसलिए आते हैं।

विश्वामित्र की यात्रा का आरंभ होता है। सरजू में स्नान करके विश्वामित्रजी राजा के दरबार में आये। महाराज दशरथजी ने महामुनि का योग्य सम्मान किया, भोजन करवाया। विश्वामित्रजी ने प्रसाद पाया। विश्वामित्रजी से जब दशरथजी ने कहा कि महाराज, हम आपकी क्या सेवा करे? तो विश्वामित्रजी ने कहा, मुझे असुर लोग सता रहे हैं। मैं संपत्ति मांगने नहीं आया, आपकी संतति मांगने आया हूं। ये आपके जो दो पुत्र है वो मुझे दे दो। अब दशरथ ने कभी कल्पना भी नहीं की कि मेरे से कोई मेरे पुत्रों की मांग करे! बूढ़ापे में पुत्र मिला है और ये महाराज मेरे पुत्रों की मांग कर रहा है? मना कर दिया। अधिक प्रेम की ये जड़ता थी और पुत्रप्रेम उसका था तो मना कर दिया। लेकिन वशिष्ठजी ने बात संभालते हुए कह दिया, राजन्, दे दो। गुरु की आज्ञा हुई। महाराज कुछ नहीं बोले। राम-लक्ष्मण को सौंप देते हैं। और राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र की ये प्रथम वनयात्रा का आरंभ होता है। दोनों भाईयों को लिए जा रहे हैं। थोड़ा आगे बढ़े ही इतने में ताड़का क्रोध कर के दौड़ आती है। विश्वामित्रजी ने राघव को संकेत किया, राघव, ये ताड़का की संतान ही हमारे यज्ञ में बाधक है। भगवान राम का मेरी समझ में यहां से अवतारकार्य का श्रीगणेश होता है। प्रभु राम ने अवतारकार्य श्रीगणेश में उद्धार की प्रक्रिया में पहले राक्षस को नहीं मारा, पहले राक्षसी को मारा। इसका मतलब व्यासपीठ ये करती है कि जहां से दुर्गुण पैदा होते हैं ये दुर्गुण की भूमिका को समाप्त किया। राघवेन्द्र ने तुरंत बाण चढ़ाया और एक ही बाण से परमात्मा ने ताड़का के प्राण को हर लिया।

दूसरे दिन सुबह में विश्वामित्रजी यज्ञ को याद नहीं करते हैं कि यज्ञ शुरू करे। भगवान को याद दिलाना पड़ा कि महाराज, यज्ञ शुरू करो। हम दोनों भाई खड़े हैं यज्ञ सुरक्षा में। आहुतियां डाली गई और यहां मारीच आया। बिना फने का बाण मारकर परमात्मा ने उसको लंका के पार भेज दिया। सुबाहु को निर्वाण दिया। यज्ञ

मुझे कल एक युवक पूछ रहा था कि बापू, 'स्वर्ग' शब्द में 'स्व' और 'ग' है तो उस शब्द को लेकर हमें कुछ कहे। सीधा-सादा बिलकुल अर्थ यदि किया जाये तो स्व की ओर गति करना ही स्वर्ग है। पर की ओर गति नहीं, स्व की ओर गति। मैं और आप गुरुकृपा से, आचार्यों की कृपा से, शास्त्रों की कृपा से, संतों की कृपा से, आत्मकृपा से, इवन अस्तित्व की कृपा से जितने अंदर जा सके। बहिर्गमन नहीं, आंतर-गमन। दूसरों के प्रभाव में नहीं, अपने स्वभाव में जीना। भगवद्कथा का, कोई भी शास्त्र का श्रवण, मनन, निदिध्यासन, स्वाध्याय, प्रवचन करते-करते यदि स्व की ओर हमारा गमन शुरू हो जाये तो ये स्वर्ग का पंथ हो जाएगा।

पूरा हुआ। विश्वामित्रजी के पास साधन भी थे, साधना भी थी, शस्त्र भी थे, शास्त्र भी थे, मंत्र भी थे, सूत्र भी थे। छ हो थे। बहुत मुश्किल है एक आदमी में छ हो होना। लेकिन हमारे पास शास्त्र हो, शस्त्र हो, साधन हो, साधना हो, मंत्र हो, सूत्र हो, इससे काम नहीं बनता यदि राम न हो। राम का होना आवश्यक है। तो राम-लक्ष्मण आये तब बात बनी। राम मानी सत्य, लक्ष्मण मानी समर्पण- त्याग। त्याग और ज्ञान, त्याग और भाव, त्याग और प्रेम जो कहो। यदि हमारे जीवन में सत्य और समर्पण न आये तो साधना, साधन, मंत्र, सूत्र, शास्त्र, शस्त्र सब धरे रहते हैं। नरसिंह मेहता ने गाया-

ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व जूठी।

प्रभु का आश्रय ही घटना को धन्य करता है।

यज्ञरक्षा हुई। उसके बाद कुछ दिन भगवान रहे। विश्वामित्रजी ने कहा कि राघव, आप यज्ञ पूरा करने के लिए निकले हैं, मेरा यज्ञ तो पूरा कर ही दिया लेकिन दो यज्ञ ओर बाकी है। एक रास्ते में अहल्या की प्रतीक्षा का यज्ञ और तीसरा सीता के स्वयंवर का धनुषयज्ञ। धनुषयज्ञ की बात सुनी और भगवान राम महर्षि विश्वामित्र के संग चल दिये। पदयात्रा शुरू होती है और रास्ते में एक आश्रम आया। पशु-पक्षी कोई नहीं दिखता, शांत सन्नाटा! गौतम ऋषि का आश्रम। अहल्या चट्टान देह पड़ी है। भगवान राम जिज्ञासा करते हैं विश्वामित्र से कि किसका आश्रम है? ये कौन चट्टान देह पड़ा है? और विश्वामित्रजी कहते हैं, ये गौतम ऋषि का आश्रम है। ये गौतमनारी शाप के आधीन पत्थर देह पड़ी है; आपके चरणकमल की रज की वो याचना कर रही है; आप कृपा करे।

युवान भाई-बहनों, जीवन है, जीवन में भूलें होती है, कमियां होती है, कुसूर होती है। लेकिन अहल्या का प्रकरण बहुत बड़ा आश्वासन है। कृष्णमूर्ति का एक वाक्य बहुत प्रिय रहा मुझे; वो कहते हैं, भूल करो, खूब करो, आपसे जितनी हो कर लो लेकिन बार-बार मत करो; दोहराओ ना। भूल के बाद जब लगे कि ये कदम गलत था; परिणाम का अनुभव करने के बाद रुक जाओ। और ऐसे रुको कि भूल का पुनरावर्तन न हो। इसलिए अहल्या पत्थर हो गई इसका मतलब है, अब वो कुछ नहीं करेगी। हमारे लिए इतनी सीख प्राप्त करे कि कमजोरियां हम में होती है, कुसूर होता है, भूलचूक हो जाये लेकिन उसको दोहराये ना। अब हमारा क्या होगा? हमने इतनी बड़ी भूल कर दी, क्या होगा? क्या होगा? नहीं, बैठ जाओ। बैठ जाओ तो अयोध्या जाने की जरूरत नहीं, अयोध्या का राम तुम्हारे पास आयेगा। एक ऋषि हमारे लिए वकालत करेगा कि उस पर कृपा करो। और भगवान राम करुणा करते हैं।

मेरे भाई-बहन, उद्धार हो सकता है, कोई चिंता नहीं करना। लेकिन भूल हो जाए हमसे तो अहल्या के चरित्र से हम ये पाठ सीखे कि इतने स्थिर हो जाये; हमारे समग्र चांचल्य को हम रोक ले; रजोगुणी वृत्तियों को सिमट ले तो हरि को बाध्य होकर आना पड़ेगा। अहल्या का उद्धार हुआ। उसी प्रसंग पर व्यासपीठ कहती रहती है कि दुनिया में कई लोग विचारक होते हैं; अच्छे विचारक होते हैं। अच्छे विचार प्रस्तुत करते हैं। विचारक तो बहुत होते हैं लेकिन उद्धारक कितने होते हैं? चाहिए उद्धारक, जो उद्धार करे। खाली सोचता रहता नहीं, उद्धार करे। और उद्धारक भी कई होते हैं, लेकिन इनमें से स्वीकारक कितने जो कुबूल करे? एक कृष्ण विचारक भी, उद्धारक भी, इतनी स्त्रीयों को कौन स्वीकार करता? दुनिया की बदनामी सहन कर कृष्ण ने इतनी स्त्रीयों का स्वीकार किया। राम तीनों करते हैं। कृष्ण तीनों करते हैं। राम विचारक है, राम उद्धारक है, राम स्वीकारक भी है। बड़ा मुश्किल है स्वीकारना।

अहल्या का उद्धार करके भगवान राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ आगे बढ़े। भगवती गंगा के तट पर आये। भगवान ने गंगा में स्नान किया। तीर्थ के देवताओं को दान दिया और पदयात्रा आगे बढ़ी। जनकपुर आये। आम्रकुंज में निवास किया। जनक को खबर मिली। सबको लेकर विश्वामित्र का सम्मान हुआ। राम का दर्शन करते हैं। विदेहराज विशेष देह बन गये, डूब गये कि ये कौन है? पूछा। विश्वामित्र ने जवाब दिया। आनंद में डूब गये। मिथिला में एक 'सुंदरसदन' नामक महल था वहां राम-लक्ष्मण विश्वामित्र आदि मुनियों के साथ ठहराये गये। मुनियों के संग भगवान ने भोजन किया फिर थोड़ी देर विश्राम किया।

मानस स्वर्ग ७

'रामचरितमानस' स्वयं स्वर्ग है

'मानस-स्वर्ग', यहां आधार तो लेते हैं स्वर्ग के बिलग-बिलग संदर्भों का; अल्प स्वर्ग की हमारी खोज नहीं है। हम वो स्वर्ग की खोज में है जो शाश्वत है, जो अनंत है, जो अमृतमय है। उसीके मूल रूप में सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हो रही है। आइए, 'मानस-स्वर्ग' का कुछ ओर दर्शन करें। मैं एक मंत्र लिखकर लाया हूं। उपनिषद का नाम है 'आत्मप्रबोध उपनिषद', उसमें स्वर्ग की एक सुंदर परिभाषा है। स्वर्ग के बारे में आज एक-दो प्रश्न भी है मेरे पास कि जिस शाश्वत स्वर्ग की चर्चा है उसकी नौ विधा का कल जो दर्शन किया, जो भीतरी गमन, स्व की ओर लौटना, अंतर्मुखता की बात जो कल की गई उसके बारे में भी वैसे मैंने कल कह दिया था। लेकिन 'मानस' में भी एक संकेत है। उस शाश्वत स्वर्ग को, उस अमृतमयी स्वर्ग को, उस अभय स्वर्ग को पाने के लिए 'मानस' में बिलकुल स्पष्ट लिखा है। दशरथजी जब प्राणत्याग करते हैं राम के वियोग में तब तुलसीदासजी ने लिखा; यद्यपि बहिर् बात है लेकिन ये बात का हम आधार ले सकते हैं।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।

सुरधाम का अर्थ है स्वर्ग। सुरधाम मानी स्वर्ग। महाराज राम के विरह में सुमंत ने जब संदेश दिया कि अब तीनों में से कोई लौटनेवाला नहीं; तब महाराज ने निर्णय ले लिया कि अब जीने का कोई अर्थ नहीं, तो फिर वो छः बार 'राम' शब्द का उच्चारण करते हैं। और यही स्वर्गप्राप्ति का मार्ग है। छः बार 'राम-राम' बोलकर महाराज स्वर्ग गये इसका मतलब है, रामनाम स्वर्गदाता है। चाहे बहिर् स्वर्ग जिसको चाहिए, चाहे आंतर स्वर्ग जिसको चाहिए। बहुत स्पष्ट दो टूक निर्णय है रामनाम। और हमारे यहां कोई भी बात त्रिसत्य की जाती है। ये पूरा दोहा आप तीन बार बोलो तो पूर्ण हो जाये। और तीन बार बोलने से अठारह बार 'राम' शब्द बोला जाएगा। और अठारह बार बोलने से केवल एक बेरखो फेरवो और सुरधाम।

एक शर्त, ये छः बार 'राम' शब्द का उच्चारण परम के विरह में हो ये उच्चारण विरह विशेष अवस्था का उच्चारण। संयोग अवस्था में भी हम 'राम-राम' बोले उसका अद्भुत फल है, लेकिन कोई वियोग अवस्था में 'राम' बोले उसकी फ्लाईट डाईरेक्ट है। शरीरत्याग किया अवधपति ने रोगग्रस्त होकर नहीं। शरीरत्याग किया दशरथजी ने बूढ़ापे के कारण नहीं। शरीर त्याग दिया महाराज ने; अकस्मात से नहीं। शरीर त्याग दिया महाराज ने। जिसको हम एक आकस्मिक मौत कहते हैं, अल्प मृत्यु कहते हैं, अचानक मृत्यु, ऐसा नहीं। एकमात्र कारण मेरे गोस्वामीजी देते हैं कि शरीर छोड़ने का एकमात्र कारण था रामविरह। जब कोई साधक अपने प्रिय के विरह में प्राण छोड़ता है तो ये सुरधाम का अधिकारी हो जाता है। यद्यपि हमें वो सुरधाम नहीं चाहिए। वहां दशरथजी गये और 'लंकाकांड' में फिर वापस भी आये, फिर चले गये। हमें वो स्वर्ग चाहिए जहां से कभी गिरना न हो; जहां से कभी लौटना न पड़े। जहां अमृत्व हो, अभयत्व हो वो स्वर्ग की यहां चर्चा है। और वो अवस्था मिलती है विरह में पुकारे गये हरिनाम से।

मैंने कई बार उसका जिक्र किया है कि किसी परम व्यक्ति के अंतिम समय की सेवा मिले उसके समान बड़भागी कोई नहीं। सबके हाथ हमारे हाथ पकड़ने के लिए तैयार होते हैं। जुवानी में तो कई लोग कोई हेतुओं से हाथ पकड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। थोड़ी प्रौढ़ता आई तो फर्ज़ के कारण भी कई हाथ पकड़ लेते हैं। मानवता के कारण भी कोई सहयोग करते हैं। लेकिन जब कोई परमतत्त्व विदा लेता हो और आखिर में उसकी सेवा मिले। जब तक कृष्ण ने द्वारिका नहीं छोड़ा था तब तक सेवा की अधिकारिणी बनी लक्ष्मणा। ये कैसा दृश्य रहा होगा कि जब कृष्ण द्वारिका से विदा लेते हैं और लक्ष्मणा वहीं खड़ी है। गोपियों ने कृष्ण को बिदा दी, यशोदा ने दी। लेकिन लक्ष्मणा जब बिदाई देती है, दो-तीन बार कृष्ण ने लक्ष्मणा की ओर देखा, बेटा, अपना ध्यान रखना। क्या? बोले, बेटी, स्मरण का अनुसंधान रखना। बेटी, तूने मेरी बहुत सेवा की। परमेश्वर जब किसी की सेवा की नोंध ले उसकी मुठ्ठी में स्वर्ग होता

है। वो अकेला नहीं, पूरे परिवार को स्वर्ग प्रदान कर देता है। 'सो कुल धन्य'; वो कुल धन्य है, वो परिवार धन्य है जिस कुल में, जिस परिवार में हरि का भजन करनेवाला कोई सपूत निकले।

मैं आपसे ये निवेदन करने चला कि हरिनाम का उच्चारण यदि कोई वियोग अवस्था में करे तब स्वर्ग को इच्छा होती है कि मैं नीचे चला जाऊं; इनके कदमों में चला जाऊं; जो पुकार रहा है हरि को उसके चरणों में जाऊं; उसकी चरण धूल लूं। तो एक मार्ग हो गया 'मानस' के आधार पर कि विरह अवस्था में जब कोई छः बार प्रभु का नाम ले और शरीर शांत हो जाये तो समझना वो गमन स्वर्ग-गमन है; शाश्वत स्वर्ग की ये गति है। इसलिए 'रामायण' में ये सात स्वर्ग प्राप्ति की एक फोर्म्यूला बता दी। संयोग में कौन भजता है? भजन तो वियोग में होता है। दिन में कौन भजन होता है? भजन तो रात में होता है। सुख में कौन भजता है? भजन का परिपाक, भजन का स्वाद तो समस्याओं में जब तुम घिर जाओ तब ही होता है।

तो शाश्वत स्वर्ग का, उस अवस्था की प्राप्ति का एक मार्ग है रामस्मरण, केवल रामस्मरण; इससे बड़ा कुछ नहीं है संसार में। एक दूसरा मार्ग शाश्वत स्वर्ग प्राप्ति का 'मानस' की एक पंक्ति में तुलसी बताते हैं-

सीता राम संग बनबासू।
कोटि अमरपुर सरिस सुपासू।।

इसका शब्दार्थ होता है, सीता-राम के साथ वन में रहना एक स्वर्ग नहीं, कोटि-कोटि अमरपुर से ज्यादा सुखदायी है। लेकिन सीता-राम तो त्रेतायुग में थे; चले गये। आज कहां खोजे हम? इच्छा तो होती है हम उनके साथ जहां जाये वहीं जाये लेकिन जो नरलीला करने के लिए आये वो तो हमारे सामने कितना बड़ा लंबा फासला हो गया! कहां त्रेतायुग? बीच में एक द्वापर चला गया और आज हम कलियुग में है। उसके पास चाहे तो भी जाये कैसे? स्थूल रूप में हमारे पास सीता-राम नहीं है। दूसरा अर्थ गुरुकृपा से लगाना पड़ेगा। तीन के साथ निवास करना अनंत-अनंत स्वर्ग का सुख है। यहां तीन है। सीता-राम संग; उसके साथ और ये तीसरा है वन। सीता, राम और वन में साथ रहना। सीता के साथ रहना, राम के साथ रहना, वनवास करना ये कोटि-कोटि अमरपुर से भी ज्यादा सुखदायी है। सीता मानी भक्ति। राम मानी ज्ञान। और वन मानी वैराग्य। जो व्यक्ति संसार में रहकर भजन करेगा, जो व्यक्ति संसार में रहकर अपने विवेक को बचायेगा और जो व्यक्ति संसार में रहकर भी किसीको पता न लगे ऐसे धीरे-धीरे संसार से असंग होता जाएगा वो कोटि-कोटि अमरपुर का सुख का अधिकारी है। भजन भागने की चीज नहीं है। विवेक केवल शास्त्रों में मत खोजे। ज्ञान और वैराग मानी सबकुछ छोड़कर भागना नहीं है। उसके साथ हम ऐसे जीये तो कोटि-कोटि अमरपुर वास है ये। और मुझे आनंद है कि ये जो आज की नई-नई चेतनाएं, आज की युवानी और आज की प्रौढ़ता भी, भगवद्कथा से कितनों की ग्रंथियां छूट रही है! गलत श्रद्धाएं टूट रही है; चमत्कार-परचा से लोग दूर जाते जा रहे हैं और मुख्य मार्ग पर आ रहे हैं।

तो स्वर्ग मानी कैसे जीना? भाव में जीना, महोब्बत में जीना। स्वर्ग मानी विवेक। स्वर्ग मानी वैराग्य। धीरे-धीरे आदमी में वैराग आना चाहिए। एक क्षेत्र-खेत है शरीर। दूसरों को तो ना लेकिन क्षेत्र को भी पता न लगे कि मुझमें वैराग प्रकट हुआ है। देह को भी पता न लगे ऐसे उगे वैराग। और 'मानस' में लिखा है, केवल विषयों के फूल में जो भ्रमण करता है उसमें वैराग नहीं उगता। यात्रा करनी पड़ेगी। आगे-आगे जाना पड़ेगा। विवेक की गति फूल तक जाना होगा, फल तक जाना होगा, रस तक जाना होगा। अंदर उगे और किसी को पता भी न लगे। वैराग की मुलाकात हो, किसी को पता न लगे ऐसे। विवेक की मुलाकात हो, किसी को पता न लगे। जीवन ज्ञानमय हो जाये, किसी को पता न लगे। क्योंकि लोगों को पता लगे कि आपमें ज्ञान का उदय हुआ तो वो डिस्टर्ब करेगा और आपका अहंकार भी आपको खुद परेशान करेगा। उगने दो, उगने दो। और सत्संग से मिला बीज कभी न कभी उगता है; अपने आप उगने दो। एक बार किसान बीज बोता है तो फिर खींचकर उसकी कोपलें नहीं निकालता; उसकी प्रतीक्षा करता है, निकलेगा, निकलेगा। जिसमें वैराग आ जाता है; वैराग मानी ये संसार में रहेगा; खाना-पीना सब कुछ हमारी तरह करता है; जैसे महापुरुष होते हैं। लेकिन कभी किसी ने पूछा था कि जिसस क्राईस्ट को खीले मार दिये तो क्या उसको पीड़ा नहीं हुई होगी? गांधी को गोली

मार दी! विष पिला दिया मीरां को, सुक्रात को! पीड़ा नहीं हुई होगी? जो महापुरुष सताये गये दुनिया से उसको पीड़ा नहीं हुई होगी? सुक्रात कहीं नहीं भागा। जिसस कहीं नहीं भागे हैं। अपने कबीलेवालों ने हज़रत कराई वरना पैगम्बर को भागना नहीं था। लेकिन उन्हींके लोगों ने उसको हजरत करने को बाध्य किया था। कोई भागे नहीं बुद्धपुरुष। कबीर कहीं नहीं भागे। पूरी ज़िंदगी वस्त्र बुनते रहे और काशी के बाज़ार में बेचते रहे कबीर। 'वैराग' बड़ा प्यारा शब्द है। स्वामीनारायण संप्रदाय के एक संत हुए निष्कुलानंदजी, उसका पद बहुत प्यारा है; बहुत बार मैंने गाया है। मुझे बहुत प्यारा लगता है ये पद। वो कहते हैं-

त्याग न टके रे वैराग विना, करीए कोटि उपाय जी।
अंतर ऊंडी इच्छा रहे, ते केम करीने तजाय जी।

आंतरिक कीर्ति के पात्र में ही त्याग टिकता है। विरति की अवस्था है पात्र, उसमें त्याग का अमृत रहता है। त्याग का अमृत रहता है विरति की अवस्था के पात्र में। पेन्ट पहनकर भी त्यागी हुआ जाता है; फेक्टरी में जाकर हुआ जाता है। हम सबको छोड़कर निकले ये कोई इतना बड़ा त्यागी नहीं कि वैरागी नहीं। भरी समस्याओं के बीच में रहे भीतर पका हुआ हो वो वैराग। उसीका संग कोटि अमरपुर से ज्यादा सुखदायी है। और बच्चों, मैं आपको वैरागी बनाना नहीं चाहता। आप उसका गलत मेसेज मत लेना। मैं छोटे-छोटे बच्चों को कहना चाहता हूं, यहां मेरा त्याग मानी आप अच्छे कपड़े पहनों, गहने पहनों, आप खाओ, मौज करो, आनंद करो भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए लेकिन तुम्हारे पास ज्यादा है और कोई आपको दिखाई दे उनके पास कम है, उसी समय माँ-बाप को भी पूछने की जरूरत नहीं; तुम्हारी आत्मा कहे और उसको थोड़ा देते जाओ ये तुम्हारा वैराग है। वैराग मिन्स तुम्हारे साथ पढ़ती कोई लड़की, कोई लड़का, कोई बच्चा उसके पास जेब के पैसे न हो उसी समय देना। कोई बड़ा निर्णय लो तो माता-पिता को पूछो। खुद आत्मा से भी निर्णय ले सकते हैं अथवा तो तुम्हारे माँ-बाप भी जिसको मानते हैं ऐसे किसी बुद्धपुरुष को पूछकर निर्णय लेना। तुम्हारा त्याग ये है, वैराग ये है बाप! कितना अधिक हमारे पास है, सोचो तो! और कितने लोग वंचित है, अभाव में है। कोई तो न्याय करो, बेलेन्स करो। लोग कहते हैं, जीवन प्रवाह है, जीवन एक गति है, निरंतर चलता रहता है। यदि जीवन एक नदी के प्रवाह की तरह है तो कम से कम हम नदी से सीखे। कोई भी नदी बहेगी, झरणा बहेगा तो बीच में आये गड्ढे को पहले पूरा करेगा, भर देगा; उसके बाद आगे जाएगा। जीवन की गति आगे करनी है तो जो अभावग्रस्त किस्मत के मारे लोग मिल जाये तो उसको भरते जाओ।

चलो, कुछ दे भी न पाओ लेकिन एक वृत्ति होनी चाहिए कि मेरे पास होता तो मैं कितना देता! एक फ़कीर की झोंपडी में एक चोर चोरी करने जाता है और कुछ नहीं मिला; एक घंटे तक उसने चोरी की, कोशिश की कुछ नहीं मिला। वो फकीर बेचारा बाहर बैठा था, लेटा था। उसने रोका भी नहीं। उसने सोचा कि बैठे-बैठे सो गया है। वो सोया नहीं था। चोर अंदर गया। एक घंटे की तलाश के बाद कुछ नहीं पाया। बाहर निकला तो फ़कीर ने पूछा, कुछ मिला? बोले, कुछ नहीं! तुमने इतनी महेनत की फिर भी कुछ नहीं मिला लेकिन मेरे हाथ में होता तो पूर्णिमा का चांद तोड़कर तुझे दे देता! लेकिन मेरे पास कुछ न हीं। ये वृत्ति वैराग है। कवि काग ने भजन लिखा, पद लिखा। दो पंक्ति सुनिए। कोई आये तो ऐसा मत पूछना कि क्यों आये हैं? ऐसे मत पूछना।

केम तमे आव्या छो? एम नव के'जे रे...
एने धीरे ए धीरे तुं बोलवा देजे रे,
आवकारो मीठो आपजे रे... जी...

सुनो, प्राणवान पंक्ति सुनिये-

मानवीनी पासे कोई... मानवी न आवे रे...
तारा दिवसनी पासे दुःखियां आवे रे,
आवकारो मीठो आपजे रे.. जी...

मोरारिबापू पासे तमे शुं काम आवो छो? मारी पासे 'रामायण' न होत तो हुं स्विट्झरलेन्ड जोई न सकुं! हुं मुंबई न जई शकुं साहेब! ऐवा अभावमां मोटो थयो छुं। आ कोनो प्रताप छे? आ एक पाघडीनो अने आ 'मानस'नी चोपाईयोनो। एम पोतानी क्षमताने याद राखजो अने एने पचावजो। क्षमताने याद राखे ए आदमी धन्य छे।

तो मैं तो आपको 'आत्मप्रबोध उपनिषद' का एक मंत्र कहनेवाला था; वहीं से बात आगे बढ़ी। ये मंत्र आप सब, बोलिएगा। थोड़ा कठिन है, लेकिन मैं इसका

टुकड़ा करके सुनाऊं। आप सुनिएगा। बहुत लंबा है; मैं छोटा करूं।

स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके
सर्वान्कामानात्वाऽमृतः समभवदमृतः समभवत्।
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोकेऽभ्यर्हितम्।
तस्मिन्मां देहि स्वमानमृते लोके अक्षते अच्युते लोके
अक्षते अमृतत्वं च गच्छत्यों नमः।

यहां स्वर्ग की मुझे इस ग्रंथ से तीन-चार व्याख्या प्राप्त हुई। स्वर्ग की व्याख्या करने के लिए लंबी भूमिका ऋषि बना रहा है। वो कहता है, जिस व्यक्ति की सर्व कामना पूर्ण हो गई हो, जिसको हमारे शास्त्रों मे या तो निःकाम या पूर्णकाम कहते हैं। उपनिषदकार कहते हैं, जिस व्यक्ति को देखने से लगे कि इस आदमी की आंख में कोई कामना नहीं है; ये आदमी की प्रवृत्ति के पीछे कोई अपेक्षा नहीं है; इस आदमी की पूरी जीवनी के पीछे कोई हेतु नहीं है कि मैं ये ले लूं; कोई उद्देश्य नहीं है, कोई उसका लक्ष्य नहीं है; केवल-केवल भजन हो ऐसी कोई भी व्यक्ति आपको राह में मिल जाये तो समझना ये व्यक्ति नहीं है, राह में मिला स्वर्ग है। आपकी आत्मा कहे कि इसकी सभी कामनाएं पूर्ण हो चुकी ऐसा हो तब समझो कि तुम स्वर्ग का संग कर रहे हो। ये स्वर्गयात्रा है, ये स्वर्गारोहण है। और संसार में ऐसे होते हैं। स्वर्ग में जाने की जरूरत नहीं। ऐसे कोई बुद्धपुरुष के थोड़ा डिस्टन्स करके बैठे रहो, स्वर्ग है।

जुवान भाई-बहन, कभी डिप्रेश मत होना। साहब! तुम्हारे साथ रामकथा है, तुम्हारे साथ मोरारिबापू है। प्लीज़, उसको मेरा गर्व मत समझना लेकिन मैं शरीर में हूं, तुम्हारे साथ में हूं, जब तक हूं; चेतना से भी तुम्हारा पीछा करूंगा साहब! ये मेरा वादा है। डिप्रेश क्यों होते हो? राहत इन्दौरी का शे'र है-

खूब खर्च करो मेरे बच्चों,
मैं अकेला कमाने के लिए काफ़ी हूं।

तो चर्चा चल रही थी कि कोई बुद्धपुरुष बैठा है, जिसकी समस्त कामनाएं समाप्त हो चुकी हो; कोई प्रचार करते हमने सुना है ऐसा मत मानना, खुद महसूस करना। और जब अंतरात्मा कहे कि नहीं, इसकी कोई कामना नहीं है तब दूर बैठे-बैठे उसको महसूस करना। ये स्वर्ग संग है। 'समभवदमृतः।' इसका अर्थ है, जिस व्यक्ति में समस्त का समन्वय देखो उसको स्वर्ग समझना। बड़ा प्यारा सार शताब्दियों से, युगों से कभी-कभी धरती पर ऐसे फरिश्तें आते हैं जो सबका समन्वय करता है।

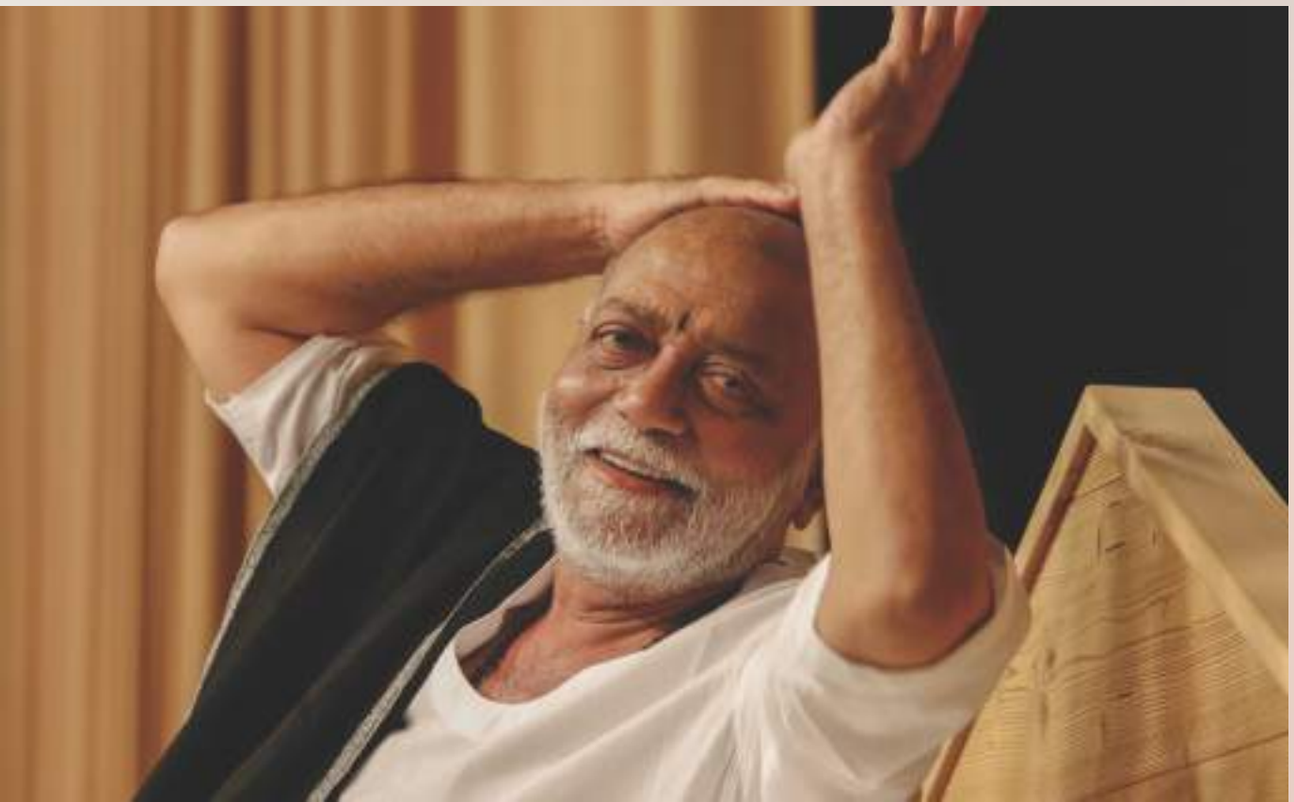

कभी कबीर आया; कई महापुरुष इस धरती पर जो समन्वयकारी है; जिसके देखने से हमें पता लगे कि इसमें बुद्ध भी दिखता है, उसमें महावीर भी दिखता है, इसमें ठाकुर भी दिखता है, जिसमें सांईबाबा दिखता है, जिसमें रमण दिखते हैं, जिसमें मीरां दिखती है, नरसिंह दिखता है, ज्ञानदेव दिखता है, तुकाराम दिखता है। समन्वयकारी संत स्वर्ग है। बहुत ऊंचाई से की गई ये बातें है। हम संप्रदायों में बद्ध है!

टागोर ने 'गीतांजली' में स्वर्ग के कुछ सूत्र दिये कि जो आदमी बोले और हमें प्रतीत हो कि ये बहुत सत्य की गहराई से बोल रहा है; इसके एक-एक वर्ड, एक-एक शब्द बिलकुल सत्य में नहाकर के निकलता है, ऐसा हमें जब आत्मा से महसूस हो तो वो स्वर्ग है। टागोर कहते हैं, जहां ज्ञान निर्भीक हो वो स्वर्ग है। ज्ञान भयभीत न हो ये स्वर्ग है। टागोर का तीसरा सूत्र है, जहां मानवता का सम्मान हो और आदमी कोई भी हो उसका सिर उन्नत रहता हो, आदमी का गौरव हो वो स्वर्ग है। और ये समन्वयवादी सूत्र की बात मैं कई बार आपसे करता हूं कि जहां सामाजिक दीवारों से दुनिया विभक्त न होती हो, समन्वय होता हो; जहां हमारा सिर गर्व से नहीं, गौरव से ऊंचा रहे ये स्वर्ग है। जहां ज्ञान भयमुक्त है, जहां ज्ञान को किसीका डर न हो। जहां दुनिया दुःखी न हो सम्प्रदाय के नाम पर, तथाकथित धर्मों के नाम पर, पंथी के नाम पर, हमारे आग्रहों के नाम पर, पूंजीवादी के नाम पर।

'रामचरितमानस' स्वयं समन्वय का ग्रंथ है। पूरा का पूरा ये शास्त्र समन्वय शास्त्र है, इसलिए स्वर्ग है। 'मानस' मानी हृदय; हमारा हृदय प्रेमपूर्ण स्वर्ग है। 'मानस' मानी दिल; दिल स्वर्ग है। 'रामचरितमानस' में समन्वय किया है। भगवान राम कैसे-कैसे ऋषिमुनियों से बातचीत करते हैं! आप कल्पना तो करो, समझ में न आये ऐसे प्रकांड विद्वान और तपस्वी ऋषियों से बात करे वो ही भगवान राम एक केवट, एक बंदर, एक निषाद इनसे भी इतनी ही रस से बात करते हैं। ये है समन्वय। ये है स्वर्ग। ये विचारधारा स्वर्ग है। ये चिंतन स्वर्ग है। ये तुलसी का दर्शन शाश्वत स्वर्ग का परिचय देता है। मुझे बहुत होता है, 'मानस' के ओर रहस्य खोले जाये, खोले जाये।

भगवान राम भरद्वाज ऋषि से मिले वनयात्रा में और भगवान राम भरद्वाज ऋषि से कहते हैं, आप मुझे मार्ग बताओ कि हम किस मार्ग पर जाये? तो भरद्वाजजी ने पूछा, पहले आपको जाना कहां है, बताओ। फिर मार्ग बताया जाये। आप जाना कहां वो लक्ष्य तो नहीं बताते और सीधा रास्ता पूछे तो हम कैसे बताये? और महाराज, हम जानते हैं कि आपके लिए सब मार्ग सुगम है और यदि आपको कहां जाना वो नहीं बताना है तो फिर कहीं भी चलो कोई भी रास्ता खुला है। और भरद्वाजजी भगवान राम को मार्ग नहीं बता पाये। क्योंकि भरद्वाजजी समझते थे कि राम पूर्ण है। पूर्ण का कहीं आना नहीं होता, कहीं जाना नहीं होता। पूर्ण जो है वो कहां जाये, कहां आये? उसका आवागमन खतम। वो ही भगवान राम वाल्मीकि के पास जाते हैं तो पूछते हैं, हमें रहने का स्थान बताओ। वाल्मीकिजी कहते हैं, महाराज, पहले आप बताओ कि आप कहां नहीं हो? असमर्थ है; स्थान नहीं बताया। फिर तो एक अलौकिक स्थान बताया। चौदह स्थान ये तो हमारे लिए बताये। अब मेरी दृष्टि में जहां भरद्वाज फेईल, जहां वाल्मीकि फेईल वो ही काम एक निषाद करता है। 'नाथ साथ रहि पंथ दिखाई।' एक केवट, एक अछूत, एक निम्न कोटि के समाज का एक आदमी राम को कहता है, भरद्वाज नहीं बता पाये, चलो, मैं हूं न! ये है समन्वय कि जहां राम छोटे से छोटे व्यक्ति की भी इज्जत कर सकते हैं और बुद्धपुरुष के साथ बैठकर ऐसी तात्त्विक चर्चा करते हैं। समन्वय तो देखो इस शास्त्र का साहब! कितना अद्भुत समन्वय कर रहे हैं!

तुम छोटा गुटका लेकर निकलो; भरोसा रखना, तुम्हारी झोली में स्वर्ग है, तुम्हारी जेब में स्वर्ग है, तुम्हारी पोकेट में, तुम्हारे पर्स में स्वर्ग है। भरत समन्वयकारी संत है। संन्यासी हो उसको गृहस्थ का धर्म अनुकूल नहीं पड़ता। गृहस्थ हो वो संन्यासी के लक्षण नहीं निभा पाते। वानप्रस्थ हो वो ब्रह्मचारी का; लेकिन भरत ऐसा समन्वय है। तुलसी कहे, वानप्रस्थी देखते हैं तो भरत में वानप्रस्थी दिखता है। संन्यासी देखते हैं तो यति दिखता है। गृहस्थ देखे तो ऐसा कोई गृहस्थ नहीं है, ऐसा दिखता है। और ब्रह्मचारी देखे तो ब्रह्मचारी दिखे। ये समन्वय है ये शास्त्र का। आप कल्पना कीजिए साहब! कोई कबीर, कोई फ़कीर समन्वयकारी इस संसार में युगों के बाद आता है; शताब्दियों के बाद आता है। ऐसे थे

भरत। भरतजी जब शास्त्र की चर्चा करते हैं, धर्मसार की चर्चा करते हैं तो भरत ब्राह्मण दिखते हैं। भरतजी कैकेई माँ के साथ एकदम शौर्य प्रगट करते हैं और थोड़ा पौरुष वचन भी बोल जाते है तब भरतजी क्षत्रिय दिखते हैं। वो ही भरतजी राज की लेन-देन में कहते हैं कि मैं इतना त्याग करने के लिए तैयार हूं, सबकुछ छोड़ने के लिए तैयार हूं तब भरतजी वैश्य दिखते हैं। और वो ही भरतजी जब पर्णकूटी में बैठकर भगवान राम के स्मरण में, प्रभु के चिंतन में सेवकभाव से बैठ जाते हैं। भरतजी में चारों वर्ण दिखते हैं; चारों आश्रम दिखते हैं। कोई-कोई महापुरुष विश्व को मिलता है ऐसा, जिसमें गृहस्थ को गृहस्थाश्रम दिखे; वानप्रस्थ को वानप्रस्थ। और ये सब होना ही चाहिए।

मेरे भाई-बहन, मैं आपसे बात इसलिए करूं; आप सोचो, आपका हाथ पूजा के फूल चूंटे, आपका हाथ 'भगवद्गीता' खोले, आपका हाथ भगवान को चंदन करे, आपका हाथ भगवान को माला पहनाए तब आपका हाथ ब्राह्मण है। लेकिन तुम्हारी पूजा में कोई विघ्न करने आये, कोई माला जुटाने आये, कोई प्रसाद तोड़ने आये, तुम ऐसे हाथ करो तब तुम्हारा वो ही हाथ क्षत्रिय है। पूजा के समय कोई संत-साधु आया, कोई भक्त आया, कोई वैष्णव आया और तुम वहां से फूल लेकर उसको दो ठाकुरजी का प्रसाद तब तुम्हारा हाथ वैश्य है। और तुमसे कोई श्रेष्ठ हमारे घर में आया तब तुम्हारे हाथ से उसके चरण की सेवा करो तब तुम सेवक हो। एक हाथ ब्राह्मण है, क्षत्रिय भी है, वैश्य भी है, शूद्र है। और वो ही समन्वय जिसमें हो उसको वेद ब्रह्म कहते हैं। 'अयं मे हस्तो भगवान। अयं में भगवत्तर:।' महामुनि विनोबाजी कहा करते थे कि विश्व को विश्वमानुष की जरूरत है। महर्षि अरविंद कहते हैं, अति मानुष का अवतरण होना चाहिए।

भरत में देखो। भगवान राम में देखो। सब जगह समन्वय। और एक संत, एक धर्म की थोड़ी रूढिचुस्त गांठों को तोड़ता जा रहा है चित्रकूट। कहां रूढिचुस्त वशिष्ठ और कहां एक अलमस्त फ़कीरी में जीनेवाला भरत! वशिष्ठजी दूर से आशीर्वाद देते हैं; वो ही वशिष्ठजी को चित्रकूट तक पहुंचते-पहुंचते हुआ कि मैं भूल कर रहा हूं। और चित्रकूट में जब गुह मिला तो गुह ने दूर से कहा, बाबा, मैं रामसखा हूं। तो तुलसी लिखते हैं, 'राम सखा मुनिबर बस भेटा।' जैसे सुना कि मैं रामसखा; तो यदि सखा है तो गले मिलाना ही चाहिए। सब धर्म की दीवारें टूटेगी। ये समन्वय है 'रामचरितमानस।' ये समन्वय है हमारा बाप राम। ये समन्वय है मेरा संत भरत। ये समन्वय है तुलसी।

मेरे बच्चों, मेरे युवान भाई-बहन, जब धीरे-धीरे 'रामचरितमानस' के सूत्र आपको समझ में आये तो तुम ऐसे उठो कि विश्व में समन्वय हो। घर-घर स्वर्ग हो। घर-घर में दीप जले। कैसा सुंदर समन्वय! मेरा मतलब इतना ही है, पूरा 'रामचरितमानस' समन्वय करता है, इसलिए 'मानस' स्वर्ग है। ऋषि कहता है, 'आत्मप्रबोध उपनिषद' में कि जहां सबका समन्वय होता हो। ज्ञानधारा भी हो, भावधारा भी हो, उपासना की धारा भी, शरणागति भी हो, गौरव भी हो। 'यत्र ज्योतिरजस्रं।' अजस्र प्रकाश है, उजाला ही उजाला जहां है। अखंड ज्योति, अखंड आत्मज्योति। अखंड आत्मप्रकाश जहां है; जहां अखंड आत्मबोध है वो है स्वर्ग। 'स्वमानमृते लोके।' जहां हमारा स्वमान संभलता हो वो हमारे लिए स्वर्ग है। जहां हमारा स्वमान हो, जहां स्वमान का अमृत बहता हो वो स्वर्ग है। जिस द्वार पर आप जाओ और आपका स्वमान अक्षुण्ण रखा जाए तो वो द्वार स्वर्ग का द्वार समझना। और बड़े-बड़े महल क्यों न हो लेकिन जहां सम्मान न हो, स्वमान न हो तो वो नर्क है। ऋषि कहता है, 'अक्षते अच्युते लोके।' स्वर्गलोक क्या है? अक्षत, जिसमें क्षत नहीं। इसलिए मैं 'शाश्वत' शब्द बोल रहा हूं। स्वल्प नहीं; जो अक्षत है। अच्युत; जिसका कभी पतन न हो। भगवान कृष्ण का एक नाम है अच्युत। हमारा तो गोत्र भी अच्युत है। वैष्णवों का खासकर के निम्बार्कियों का गोत्र अच्युत गोत्र माना जो कृष्ण का गोत्र है। हमें बहुत आनंद है यार! कृष्ण की जो-जो वस्तु है वो हम निम्बार्कियों को लागू होती है। हमारी धर्मशाला मथुरा। देवी हमारी रुकमणि। जो कृष्ण का है वो ही गोत्र अच्युत। हरिनाम आहार। परिक्रमा व्रज। खैर! अच्युत जो च्युत नहीं होता है, जिसका पतन नहीं होता है, स्वर्ग है। 'अमृतत्वं' जहां अमृत है, अमृत तत्त्व से लबालब भरा। मीठी नज़र, मीठी बोली, मीठा व्यवहार। भगवान कृष्ण चलता-फिरता एक स्वर्ग है। 'अधरं मधुरं वदनं मधुरं'; मधुर, मधुर सब।

'गीता' के न्याय से स्वर्ग की एक व्याख्या। अर्जुन, तू मर जाएगा ना युद्ध के मैदान में तो स्वर्ग प्राप्ति होगी, वीरगति होगी। 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वावा भोक्ष्यसे महीम्।' और अगर तू जीया तो पृथ्वी का राज भोगेगा। 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।' हे अर्जुन, खड़ा हो जा, युद्ध कर। मरेगा तो स्वर्ग मिलेगा, क्यों चिंता करता है? इसलिए वीरगति स्वर्ग की गति मानी जाती है। कोई रणमैदान में वीरगति हो।

तो 'मानस-स्वर्ग' की कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में करते हुए आइए, जो समय बचा है उसमें थोड़ा कथा का क्रम आगे बढ़ाऊं। कल हमने कथा में देखा कि विश्वामित्र और मुनियों के साथ राम-लक्ष्मण मिथिला के 'सुंदर सदन' नामक एक महल में ठहराये गये। वहां दोपहर का भोजन करके प्रभु ने विश्राम किया और सायंकाल होने को है तब भगवान राम ने प्रस्ताव रखा विश्वामित्रजी के सामने प्रभु, लक्ष्मण नगर दर्शन करना चाहते हैं। विश्वामित्र ने हां कही। राम-लक्ष्मण दोनों भवन से बाहर निकले। पूरा जनकपुर उमड़ पड़ा इन राजकुमारों को देखने के लिए। वयोवृद्ध बुज़ुर्ग लोग घर से बाहर आकर रास्ते के किनारे पर खड़े हो गये। कुछ बोलते नहीं; राम को देख रहे हैं। और मिथिला की महिलाएं मर्यादा से अटारियों में चढ़कर के राम की विवेकपूर्ण झांकी ले रहे हैं। इधर से बच्चें, उधर से माताएं, बहन-बेटियां, इधर से बुज़ुर्ग सबका मिलन किया है और प्रभु जा रहे हैं। सायंकाल हो गया। भगवान राम लक्ष्मण को लेकर लौटते हैं। पूरी जनकपुरी राममय बन गई। इसका सीधा-सादा अर्थ यदि करना है तो मेरी व्यासपीठ ये करना चाहती है कि ये दुनिया जनकपुर है। उसमें घूमो, अवश्य घूमो; मौज करो। लेकिन नगर देखो, दुनिया देखो तो राम की नज़र से देखो। इस संसार को अपने सद्गुरु की आंखों से देखो ताकि ज्यादा हम इसको एन्जोय कर सके। कहीं भूले न पड़े और समय पर लौट आये; गुरु के पास आये।

संध्या हुई। रात्रि का भोजन हुआ। विश्राम हुआ। दूसरे दिन सुबह गुरु की पूजा के लिए पुष्प लेने के लिए दोनों भाई जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं। वहां पहलीबार सीयाजु और राम का मिलन होता है। तुलसीजी कहते हैं, सीया और राम एक-दूसरे को मर्यादा से देखते हैं। एक-दूसरे को समर्पित हो जाते हैं। और जानकीजी फिर से अपनी सखियों के संग गिरजा के मंदिर में आकर भवानी की स्तुति करती है। जानकी की स्तुति में विनय है, भक्ति है सुनकर के भवानी की मूर्ति प्रसन्न होती है। प्रसादी की माला गिरती है। मूर्ति मुस्कुराती है। हो सकता है। और मूर्ति बोली। हमारे साथ मूर्ति न बोले उसका मतलब सिद्धांत न बताया जाये। कोई ऐसा अधिकारी स्तुति करे तो बोले। अब उसकी बोली में बोली होगी, कोई संकेत के रूप में बोली होगी। तो भवानी की मूर्ति जानकी को आशीर्वाद देती है कि तुम्हारे मन में जो सांवरा राजकुमार, सुजान, शील समझनेवाला है वो तुम्हें मिलेगा। मंगल शुकन होने लगे। माँ के पास जाकर बेटी ने प्रसन्नता से बात कही।

यहां भगवान पूजा के पुष्प लेकर लौटे। विश्वामित्रजी ने दोनों भाईयों को आशीर्वाद दिया। ये दूसरे दिन की संध्या हुई। उसके बाद रात्रिभोजन, विश्राम हुआ। सुबह में जागे। यहां शतानंदजी आये और निमंत्रण दिया कि जनक महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आज ये जनक-कन्या का धनुषयज्ञ है; उसके भाग्य का फैसला है; आप पधारे। विश्वामित्रजी राम-लक्ष्मण को लेकर मुनिवृंद के साथ धनुषयज्ञ में जाते हैं। उसकी चर्चा हम कल करेंगे।

'रामचरितमानस' स्वयं समन्वय का ग्रंथ है। पूरा का पूरा ये शास्त्र समन्वय शास्त्र है, इसलिए स्वर्ग है। 'मानस' मानी हृदय; हमारा हृदय प्रेमपूर्ण स्वर्ग है। 'मानस' मानी दिल; दिल स्वर्ग है। 'रामचरितमानस' में समन्वय किया है। भगवान राम कैसे-कैसे ऋषिमुनियों से बातचीत करते हैं! आप कल्पना तो करो, समझ में न आये ऐसे प्रकांड विद्वान और तपस्वी ऋषियों से बात करे वो ही भगवान राम एक केवट, एक बंदर, एक निषाद इनसे भी इतनी ही रस से बात करते हैं। ये है समन्वय। ये है स्वर्ग। ये विचारधारा स्वर्ग है। ये चिंतन स्वर्ग है। ये तुलसी का दर्शन शाश्वत स्वर्ग का परिचय देता है।

मानस स्वर्ग ८

किसी भजनानंदी की माला का दर्शन स्वर्गदर्शन है

कुछ प्रश्न है कल के अनुसंधान में। वहीं से शुरू करूं। कल जो बात हुई थी कि स्वर्ग में जाने की कई प्रकार की विधा यानी वो स्थूल स्वर्ग नहीं; शाश्वत स्वर्ग की बात है। तो दशरथजी छः बार 'राम-राम' बोलकर राम के वियोग में सुरधाम गये। उस अनुसंधान में एक जिज्ञासा है, ''बापू, राम के विरह में दशरथ सुरधाम गये ऐसे सुरों के धाम जो उनके विरह का एकमात्र कारण था। न देवता सरस्वती से विनय करते, न सरस्वती मंथरा की मति फेरती और न मंथरा कैकेई को कपट प्रबोध देती, न ही कैकेई चौदह वर्ष रामवनवास कराती। फलतः न राम वन जाते और न दशरथ को राम का विरह सहना पड़ता। बापू, बुद्धिगम्य नहीं, जो व्यक्ति आपके दुःख का कारण बने और आप उसी के पास जाये। सुरधाम में न तो राम थे और ना ही राम का नाम। क्या रामधाम साकेत उनकी नियति में नहीं था अथवा तो फिर मनु-शतरूपा को दिये वरदान स्वरूप राम दशरथ के पुत्र रूप में आये और दशरथ के लिए वो केवल पुत्र ही रह गये? बापू, कुछ तो रहस्य है ये घटना क्रम में। कृपया कुछ स्पष्ट करे।'' अच्छा प्रश्न है। आपको जरा कठिन पड़ेगा लेकिन सह लेना। पूछा है कि देवताओं ने मंथरा को प्रेरित किया कि रामराज्य नहीं होना चाहिए वरना हमारी बाजी बिगड़ जाएगी। और सरस्वती को प्रेरित किया। सरस्वती ने मंथरा को प्रेरित किया कि मंथरा की बुद्धि बिगाड़ दी और मंथरा ने अपनी कुटिलता और कपट के कारण कैकेईजी में वो पैदा कर दिया। मूल में देवता कारण है रामवनवास और दशरथवियोग के। देवता ये सब न करते तो राम को वन में न जाना पड़ता। और राम का वियोग न होता तो दशरथ को मरना न पड़ता। और ऐसा जो मूल कपटस्थान देवता है, जहां न राम का नाम है, न राम है वहां दशरथजी 'राम-राम' करते क्यों गये? दुःख देनेवाले के पास उसकी गति क्यों बताई? ट्रान्ज़िट में थे। कायमी निवास के लिए नहीं गये थे। क्योंकि जो भेदभक्ति का उपासक होता है वो सीधा-डाईरेक्ट नहीं जा सकता।

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो।
दसरथ भेद भगति मन लायो।

और दशरथ की गति तब तक नहीं हो सकती; एक बार दशरथजी की मांग थी, मुझे रामदर्शन कराओ; मुझे उसके पास ले जाओ या उसको मेरे पास लाओ। इसी रामदर्शन की अच्छी वासना के कारण उसने प्राण त्याग दिया। और उसके मन में रह गई बात पुनः रामदर्शन की इसलिए लंका के वो ट्रान्ज़िट में रहे। सुरलोक ट्रान्ज़िट है; अंतिम गंतव्य नहीं है। भजनेवालों के लिए, उपासकों के लिए नहीं है। तो जब लंकाविजय हुआ और भगवान राम-जानकी सब है तब दशरथजी फिर आये। और मनु-शतरूपा का आपने स्मरण करवाया। मनु-शतरूपा के रूप में मनु ने स्वयं मांगा था कि मुझे दुनिया मूढ़ कहे लेकिन दूसरे जनम में जब मेरे पुत्र बनकर आये तब आप के प्रति ईश्वर की रुचि मुझे न जगे, पुत्र रुचि जगे। इसलिए ये वो साकेत न गये, रामधाम में न गये। अब दूसरी बार जब राम को मिल लेते हैं; उसका बोडी तो बदल गया, बोडी तो जल गया था। तो राम का दर्शन करने के बाद वो राम को ब्रह्म मानने लगे। अब सुत विषयक गति खत्म हो गई। और फिर दशरथजी वहां गये जहां से लौटना न पड़े। आपने पूछा कि ऐसी नियति थी उसकी? नियति को तो कोई काट ही नहीं सकता यार! याद रखे आप, परमात्मा सर्व समर्थ है; वो क्या नहीं कर सकता? लेकिन नियति को निभाता है।

परम अव्यवस्था का नाम है परमात्मा, जिसको कोई नियम लागू नहीं होता। और मैं आपसे निवेदन करूं कि आपके मन में अकारण जो पहला विचार आये उसको पकड़ रखना, प्लीज़। पहला विचार परमात्मा का है; उसके बाद जो जोड़ो वो जीवात्मा है। पहले विचार, पहले संकल्प को गांठ बांधो। ईश्वर की विभूति के रूप में जितने सर्जक और

कवि इस धरती पर बिलग-बिलग भाव में जो आये हैं, ईश्वर की जो विभूति मानी गई और जो अस्तित्व की व्यवस्था के रूप में जो भी इस सृष्टि में आये हैं, इनमें से बहुत पहुंचे हुए कवियों का ये निवेदन है कि पहली पंक्ति हमें परमात्मा देता है, बाकी की सब पंक्तियां हम जोड़ते हैं। ये नियम है साहब! हां, हो सकता है, किसी-किसी कवि को पूरी कविता परमात्मा दे देता है। इसलिए मैं आपको प्रार्थना करूं, कभी अनुभव तो करो।

गुरुकृपा से मैं आपके पास मेरी बात को आप मेरे हैं इसलिए कर रहा हूं कि मैं करीब-करीब मुझे जो पहला विचार आयेगा वो मैं करूंगा; फिर शायद किसी को पसंद भी न पड़े; शायद लोगों को लगे कि ये विचार कैसा है ये? लेकिन कुछ समय के बाद वो ही लोग कुबूल करेंगे कि विचार बराबर है। तुम्हारे मन में कपट न हो, बुद्धि व्यभिचारिणी न हो, चित्त विक्षेप से मुक्त हो और अहंकार तुम्हें गर्वीला न कर दे ऐसी चित्तशुद्धि से जो संकल्प निकले उसको पकड़ लो; ये मेरा और तुम्हारा नहीं है; ये परमात्मा दत्त विचार है। उसके बाद हम जोड़ते हैं। पहला चरण देता है परमात्मा, याद रखना; बड़ा कठिन पड़ेगा लेकिन थोड़ा जोखिम लो, साहस तो करना पड़ेगा। नियम समझने के लिए धर्म की जरूरत है और नियति समझने के लिए नियत धर्मबोध की जरूरत है, ये याद रखें। धर्मबोध धर्म से कोसों दूर है। एक व्यक्ति से कभी धर्म निर्णय मत करना। मोरारिबापू बोला इसलिए धर्म हो गया, ऐसा निर्णय प्लीज़, मत कर लेना। एक व्यक्ति के द्वारा धर्म निश्चित नहीं होता। हां, वो व्यक्ति यदि समन्वयवादी है और उसमें समस्त धर्म प्रगट होते हैं ठहरी हुई बुद्धि में, तो उस व्यक्ति का विचार भी कुबूल कर लेना। तो मेरे कहने का मतलब इतना ही है साहब कि धर्म नियम बताता है, धर्मबोध नियति स्वीकार करता है। नियति का निर्णय हमें मानना ही पड़ेगा; रोते-रोते मानो या मुस्कुराके मानो; बाकी मानना पड़ेगा।

आज मुझे एक प्रश्न ऐसा किसी ने पूछा है, 'बापू, आप कहते हैं, कुसंग से दूर रहो लेकिन पूरा परिवार ही कुसंगी हो तो हम कहां जाये?' बात सच्ची है। पूरे परिवार में कुसंग है, खोटी चर्चा हो रही है, निंदा हो रही है, तो क्या करें? बाप! मैं आपकी मजबूरी समझ सकता हूं। लेकिन चारों ओर आप 'सुन्दरकांड' की पंक्ति की तरह ही जी रहे हैं, 'जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।' उसी समय जीभ जैसे दांतों के बीच में। चारों ओर तुम्हारे परिवार में कुसंग है तो जीभ बन जाओ। जीभ बनना मिन्स तुम किसी को रोको-टोको नहीं, क्योंकि कुसंग चारों ओर से भरडा ले रहा है। उसी समय जीभ बनो; अंतरमुख में हरि नाम लेते जाओ। जीभ को काम सौंप दो, हे हरि। तुम्हारे बस नहीं चलेगा। ये भी नियति हो सकती है। यू केन नोट चेन्ज इट। आप उसको चेन्ज नहीं कर सकते। ईश्वर नहीं करता तो हम कैसे कर सकते हैं? ऐसे समय में ऐसे जीये, हरिनाम लेते-लेते जहां हो वहां अपना एक स्वर्ग बना लो। न किसी से जोड़ना, न किसी को धक्का देना। तुलसी की पंक्ति फिर मैं आपके सामने रखूं-

उदासीन नित रहिअ गोसाईं।
खल परिहरिअ स्वान की नाईं।।

तुमने कितनी ही रामकथा सुनी हो। और मैं देख रहा हूं, मेरे श्रोताओं में कि कई बहन-बेटियों शादी होने के बाद जब सगर्भ होती है तो पूरी कथा पेट में बच्चों को सुनाती है टी.वी. के माध्यम से। कई लोग मेरे पास आते हैं कि बापू, अपनी चेतना को पेट में इतनी-इतनी कथा सुनाई फिर भी ये बेटा बड़ा होने के बाद तुम्हारे विरुद्ध हो जाये! नियति को कुबूल कर लो। तुमने तुम्हारा नियम निभाया है; अब नियति की आरती ऊतारो। तुमने जरा भी चूक नहीं की है। तुमने बैठ नहीं पाते तो भी टी.वी. के सामने बैठे हुए हो और बच्चों को कथाएं सुनाते हो, 'हनुमानचालीसा' सुनाते हो। मेरे पास कई बहन-बेटियां आती है कि बापू, हमारा बालक किसी से भी नहीं सुनता लेकिन टी.वी. पर आपकी कथा आती है उसी समय शांति से जो जाता है। ऐसा ही बच्चा भविष्य में कभी विपरीत हो जाये तो समझो, नियति है; निभाना पड़ेगा। और नियति के रूप में जो आदमी स्वीकार लेगा वो जरा भार से मुक्त होगा।

कहां तक अस्तित्व को शिकायत करोगे? कहां तक करोगे? तुम पतिव्रता धर्म निभाये; एक भी तुम्हारा धर्म नहीं चुका फिर भी तुम्हारा पति शराब पी कर तुम्हें मारे, गालियां दे, तुम्हारा अपमान करे और कोई संजोगों में उसका सुधार न हो तो छोड़ो नियति पर। क्या करोगे? किस से शिकायत करोगे? कौन सुनेगा? अंधाधूंध सरकार का स्वभाव वो है नियति, जो उसे रोकना मुश्किल है। ये नियति है, ओर कुछ नहीं। कई लोग कथा सुनने के लिए आने के लिए लालायित रहते, आखिर घड़ी में रह जाते हैं! और तुम्हारा विज़ा भी न हो, दो दिन में लग जाता है और तुम पहुंच जाते हो! नियति। तैयारियां बहुत हमने की; कई लोगों ने तैयारी नहीं की, आ गये! दुनियाभर में ये चलता है। मैं प्रार्थना करूं, इसके बारे में बहुत सोचो मत। पारसा जयपुरी का वो शे'र है कि-

उलझनों में खुद ऊलझकर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी ऊलझी हुई ज़ुल्फों को सुलझाने गए।

उसी पारसा जयपुरी के शे'र-

आंधियां गम की चलेगी तो संवर जाऊंगा।
मैं तेरी ज़ुल्फ नहीं हूं जो बिखर जाऊंगा।

और उसका बहुत प्राणवान शे'र ओसमान गाता है-

इससे बढ़कर क्या हमें मिलती दाद-ए वफ़ा?
हम तुम्हारे नाम से दुनिया में पहचाने गये।

हे प्रभु, तेरे नाम से पूरी दुनिया में हमारी पहचान हो गई, इससे बढ़िया कौन दाद-ए वफ़ा हो सकती है?

इस कथा का सूत्र याद रखना आप। ज्यादा संस्कार बंधन है। सम्यक संस्कार होना चाहिए। तथाकथित संस्कार की बेड़ियां तुम्हें आनंद न लेने दे तो वो क्या अर्थ है संस्कार का? तो मेरे कहने का मतलब मेरे भाई-बहन, नियति को कुबूल करो। और उपाय एकमात्र मेरे अनुभव में हरिनाम; एकमात्र उपाय। व्रज को बचाया कृष्णनाम ने। चौदह साल तक अवध को जीवित रखा राघव के नाम ने। पुराण की कथा के अनुसार विश्व का विनाश रोका था शंकर के नाम ने। एकमात्र उपाय हरिनाम।

'बापू, मुझे स्मरण है कि कभी किसी 'रामायण' का दृष्टांत लेकर आपने कैकेई के प्रेम को भी बहुत ऊंचा बताया!' दरेक शास्त्र की कैकेई भिन्न होती है। निकृष्ट प्यार और उत्कष्ट प्यार की चर्चा जो हमने की वो 'मानस' की कैकेई बारे में की क्योंकि सबका दर्शन बिलग-बिलग है। और रामकिंकरजी महाराज तो यही कहते थे कि कैकेई दोनों है। ये भरत की माता के रूप में कैकेई परम वंदनीय है और कैकेई नरेश की बेटी के रूप में ये परम निंदनीय है। पंडितजी ने ये भी कहा कि अयोध्या के मंथन से अमृत निकला वो तो सब पी गये लेकिन ज़हर निकला वो कैकेई पी गई इसलिए 'रामायण' की कोई शंकर है तो कैकेई है। सब अपने-अपने बिलग-बिलग ढंग से लिखते रहते हैं। क्रिष्न बिहारी 'नूर' साहब की एक गज़ल मुझे दी गई। जैसे मैं कहता हूं कि तुम्हारे बारे में कोई गलत बात करे, कोई अफ़वाह उड़ाये, कोई संदेह करे तो वो यदि तुम सच्चे हो तो समझना कि वो अपने खानदान का परिचय दे रहे हैं। उसी मतलब का एक शे'र यद्यपि क्रिष्न बिहारी साहब ने तो पहले लिखा होगा, लेकिन विचार मिलते-जुलते हैं।

ज़िंदगी से बड़ी सज़ा ही नहीं।
और क्या जुर्म है पता ही नहीं।
इतने हिस्सों में बंट गया हूं मैं,
मेरे हिस्से में कुछ बचा ही नहीं।

इतने हिस्सों में बंट गया हूं मैं कि मेरे हिस्से में कुछ बचा ही नहीं! मूल मैं बात कर रहा था, आपके बारे में कुछ कहे तो अपना घर का परिचय देते हैं। बहुत प्यारा शे'र है आज के माहौल पर। वर्तमान जो जगत है-

जिसके कारण फ़साद होते हैं,
उसका कोई अतापता ही नहीं।

बड़े-बड़े फसाद होते हैं उसका कारण कुछ मिलता ही नहीं, कोई अता-पता नहीं। बहुत प्यारा शे'र क्रिष्न बिहारी नूरसाहब, सलाम साहब!

सच घटे या बढ़े तो सच न रहे।
और झूठ की कोई इम्तिहां ही नहीं।

'बापू, भगवान शंकर और कुंभज ऋषि के प्रसंग में कथा में आपने कहा कि वक्ता को दक्षिणा देनी

चाहिए लेकिन आपकी कथा में तो दक्षिणा का कोई प्रश्न नहीं है। और कथा के लंगर प्रसादी में भी कोई योगदान का संभव नहीं है। तो क्या ऐसे नौ दिन कथारस का पान कर के घर चले जाना ठीक है? मन पर बोझ लगता है, कोई समाधान बताये।' तुम्हारे मन में ये पीड़ा है वो तुमने दे दिया। कोई आदमी का व्रत है कि वो दक्षिणा न ले तो जबरदस्ती देकर आप धर्म बजाओगे? जरा धर्मबोध रखो। तो इसकी जरूरत नहीं। और जो बांटा जाये वो ही प्रसाद, बेचा जाये उसको प्रसाद कैसे कहो? यहां प्रसाद दिया जा रहा है भगवान की कथा का उसमें जरा भी संकोच नहीं करना। यहां ये लागू नहीं होता।

आइए, आगे बढ़ें। मेरे पास कुछ इन्फर्मेशन है स्वर्ग के बारे में। कल मुझे किसीने पूछा था कि बापू, प्रत्येक धर्म को स्वर्ग है? हां, करीब-करीब सभी धर्म को अपना-अपना स्वर्ग है। अपनी-अपनी रीत का स्वर्ग है। तो हमारे गुणवंतबापू सावरकुंडलावाले हैं उसने कहीं से निकाल कर मुझे भेजा। तो मैं उसकी सेवा को स्वीकार करके आप तक पहुंचाऊं। दुनिया में सबसे पुराने धर्मों में से एक धर्म माना जाता है यहूदी धर्म। करीब पचीस सौ-तीन हजार साल पुराना माना जाता है। यह धर्म इज़रायल और हिब्रू भाषियों का धर्म है। उसका पवित्र ग्रंथ 'तनक बाईबल' तनक का प्राचीन भाग माना जाता है; उसका नाम है तनक। इतना पुराना होने के बावजूद भी इस धर्म में स्वर्ग की कोई संपूर्ण परिभाषा नहीं मिलती; ठोस परिभाषा नहीं मिलती। यही कारण है कि इस धर्म में स्वर्ग के भिन्न-विभिन्न अर्थ है। मान्यताओं के आधार पर यहूदियों के अनुसार मनुष्य की मृत्यु के बाद एक मसीहा आता है, कोई देवदूत आता है और परंपरा अनुसार उस मृतक शरीर की आत्मा को एक नया जीवन प्रदान करके चला जाता है, ऐसी इन लोगों की धारणा है।

दुनिया में यदि स्वर्ग की सही और सबसे पहली परिभाषा किसी धर्म ने दी हो तो पारसी धर्म ने दी है। इस धर्म के अनुसार ऐसा स्थान जो एक बड़ा सुंदर बगीचा है, जिसमें चारों ओर दीवारें बनी हुई है। पारसी धर्म का मानना है कि मृत्यु के बाद सभी आत्माएं उस बाग में जाती है। लेकिन उन्हें वहां पहुंचने में कितना समय लगता है यह उनके द्वारा किये हुए पाप-पुण्यों पर डिपेन्ड है। सब स्वर्ग में जायेंगे मृत्यु के बाद लेकिन पाप-पुण्य के अनुसार कोई जल्दी पहुंचता है। बाकी नर्क की व्यवस्था नहीं है। अच्छी बात है कि स्वर्ग मिल जाएगा देर-ब-देर। ऐसी मान्यता मृत्यु के चौथे दिन उसकी आत्मा को स्वर्ग जाने के लिए एक पूल का रास्ता दिखाया जाता है। यदि उसके द्वारा जीवन में अच्छे कर्म किये गये हो तो वह पूल बड़ा होता है और पूल के दूसरी ओर पहुंचने पर उसे एक बेहद सुंदर स्त्री लेने आती है जो उसे 'हाउस ओफ सोंग' ले जाती है, जहां वह अपनी यात्रा के अंतिम चरण का इंतज़ार करता है। अंत में उसे आखिरी दिन पर स्वर्ग में दाखिल किया जाता है जहां उसकी आत्मा को हर प्रकार का सुख प्रदान किया जाता है। ये पारसीओं का स्वर्ग।

ईसाई धर्म में स्वर्ग। ईसा मसीह कहते हैं, स्वर्गलोक यहां या वहां नहीं है। स्वर्ग अंत:स्थल में है, अंदर है; जो हम चर्चा कर चुके हैं। वास्तविक स्वर्ग इन्द्रियातीत-चिन्मय हैं; इन्द्रियगोचर-बाह्य नहीं है, अंदर है ये। जिसस ऐसा कहते थे। ये तो अच्छी बात, अपने दर्शन के अनुकूल है ये। इस्लाम धर्म का स्वर्ग; कुर्रान के अनुसार स्वर्ग एक ऐसी जगह है जहां मनुष्य की आत्मा तब जाती है जब उसके द्वारा किये हुए पुण्य उसके पापों पे भारी पड़ जाये। इतने पुण्य हो जाये कि पाप दब जाये तब वहां प्रवेश मिलता है। यानी जब अच्छाई का वजन ज्यादा हो जाता है तो व्यक्ति को स्वर्ग में दाखिल कर दिया जाता है। यह भी माना जाता है कि स्वर्ग एक ऐसा भव्य बगीचा है जहां आत्माएं आरामदायक गलीचे पर दिनभर विश्राम करती है। वहां दूध और शहद की नदियां बहती है। अंगूरों के वृक्ष और कभी वृद्ध न होनेवाली अप्सराएं है। वहां ऐसी अप्सराएं रहती है। वहां अच्छे-अच्छे फलोंवाले वृक्ष है; मनोहर वाटिकाएं है। अप्सरा आदि का वहां निवास है।

हिन्दु धर्म में स्वर्ग का दूसरा नाम मोक्ष है। एक अर्थ में मोक्ष ही व्यक्ति के जीवन को मृत्यु के बाद सफल बनाता है। क्योंकि स्वर्ग में जाने के बाद फिर से जीवन-मरण का चक्कर शुरू हो जाता है। लेकिन मोक्षप्राप्ति ही एक आत्मा का असली स्वरूप है। बौद्ध धर्म का स्वर्ग;

बौद्ध धर्म के अनुसार स्वर्ग की परिभाषा बिलकुल ही अलग एवं रोचक है। भगवान बुद्ध का मानना था कि इन्सान की इच्छाएं उसका नाश करती है। वह अपनी इच्छाओं के लिए जीता है और इन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए पुन: जन्म लेता है। यदि वह इच्छाएं खत्म हो जाये तो इन्सान असल में स्वर्गप्राप्ति कर सकता है।

'गीता' में लिखा है कि जो लोग केवल स्वर्गप्राप्ति की बात करते हैं अथवा तो स्वर्ग से बड़ा कुछ नहीं है ऐसा मानते हैं वो विवेकशून्य लोग है। ये विवेकी नहीं है जो कहते हैं कि स्वर्ग ही अंतिम लक्ष्य है। स्थूल स्वर्ग की जो कल हम चर्चा कर रहे थे। वो श्लोक मैं बोल रहा हूं-

कामात्मनः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलेप्सवः।
क्रिया विशेष बहुला भोगैश्वर्यगतीः प्रति।।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।

ये तीन-चार श्लोक एक साथ लोगे तभी इसका अर्थ निकलता है। वहां केवल स्वर्ग की कामना करनेवाला और स्वर्ग से परा कुछ नहीं है, ऐसी जो बात करते हैं उसको विवेकशून्य माना जाता है। तो उसका मतलब ये है कि हमारा भारतीय दर्शन जो सर्वोपरी है मेरी दृष्टि में। हां, मुझे कोई अहंकार की बात नहीं। है तो है! जो सर्वोपरी है वो स्वर्ग की कुछ बिलग ही व्याख्या करते हैं।

तो आइए, स्वर्ग कहां-कहां है उसके बारे में थोड़ा दर्शन सुनें। ये तो बौद्ध धर्म, पारसी धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म, हिन्दु धर्म सब आ गया। अब थोड़ा अपने ढंग से सुने। एक माँ की गोद में और बाप के कंधे पर स्वर्ग है। जब बच्चा माँ की गोद में है, स्वर्ग में है। और जब बच्चा बाप के कंधे पर है तो स्वर्ग में है। आप घर जाये, बूट ऊतारे, बैठे हैं और कोयल जैसी आवाज़ में आपकी धर्मपत्नी आपका स्वागत करे, 'आप आ गये? अभी आप ठंडा लोगे कि गरम लोगे? कब से प्रतीक्षा कर रही हूं। इतनी देर मत किया करो। आप समय पर आया करो।' आवुं बधुं बोले तो समझवानुं, स्वर्ग छे। पण, 'क्यां हता? कोनी हारे हता?' एटले समजवानुं के नर्क छे!

खुल्ले मैदान में जहां गौधन चरता हो बेरोकटोक, जैसे यहां गाय घूमती रहती है; खुल्ले मैदान में बिना रोक टोक गो मातायें चारा चरती हो उस भूमि को हमारा दर्शन स्वर्ग कहता है। उसी भूमि में जाना जहां घूम रही है गाय खुल्ले मैदान में। अब तो चले गये बाकी देहातों में गौधन थे। स्वर्ग की एक व्याख्या है, किसी पहुंचे हुए फ़कीर की आंखों में स्वर्ग होता है। ये बड़ी प्यारी परिभाषा। कोई बुद्धपुरुष, कोई सद्गुरु उनकी आंख में स्वर्ग रहता है। और वो स्वर्ग वो नहीं, ध्यान देना, जिसकी हम खोज कर रहे हैं; जो शाश्वत स्वर्गवाली बात है उसी बुद्धपुरुष की आंखों में। बुद्धपुरुष की आंखों में स्वर्ग माना गया है। एक मासूम बालक जो आपको पहचानता है, आप उसको पहचानते हो, रास्ते पर उसके माता-पिता के साथ चल रहा है, आपने ऐसे ही सहज उसकी ओर देखा, उसने आपकी ओर देखा और उसको आपसे कुछ नहीं चाहिए; आपको देखकर ऐसे ही अकारण कोई बच्चा आपके सामने मुस्कुरा दे तो समझना वो मुस्कुराहट स्वर्ग है। कामनामुक्त मुस्कुराहट, अपेक्षामुक्त मुस्कुराहट स्वर्ग है।

जिस घर में रोज स्वाध्याय होता हो 'रामायण', 'गीता' का पाठ होता हो अथवा तो जो भी आपका ग्रंथ हो; 'कुरान' का पाठ करो, क्या फ़र्क पड़ता है? 'बाईबल' का पाठ करो। यहां कोई प्रतिबंध नहीं है। अपने धर्मग्रंथ का जहां स्वाध्याय होता हो। दूसरा, जिस घर में ठाकोरजी की सेवा होती हो। व्यवस्था के रूप में आप वो करो तो चलता है आजके जमाने के अनुसार लेकिन स्वर्ग की एक परिभाषा आपको सुननी होगी कि जिस घर में कायम स्वाध्याय होता हो; जो समय हो; जिस घर में रोज ठाकुरजी की सेवा होती हो; जितना आप कर सको। तीसरा, जिस घर में भजन और भोजन साथ-साथ होता हो वो स्वर्ग है। अब भजन-भोजन साथ-साथ हो ये संभव नहीं क्योंकि आज की दुनिया है; कोई ओफिस में है, कोई देर से आये। तो जब छुट्टी हो अथवा तो एक समय घर में ऐसा हो कि पूरा परिवार इकठ्ठा होकर पांच मिनट प्रभु का स्मरण करे या तो कुछ जो भी करे उसको भी स्वर्ग माना गया है।

आप राजी होओगे, ये सब किसी संतों के द्वारा, किसी ग्रंथों के द्वारा, कुछ तलगाजरडा के द्वारा ये स्वर्ग की नई परिभाषा है; उसको सुनते जाओ। साहब! किसी भजनानंदी की माला का दर्शन स्वर्ग-दर्शन है। यस, नो डाउट। कोई फ़कीर की तस्बीह जिस पर उसने खाविंद को बहुत भजा हो, अल्लाह को पुकारा हो ऐसे कोई फ़कीर की तस्बीह का दर्शन स्वर्ग है। एक ही ग्रंथ पर किसी साधु-संत ने पूरी ज़िंदगी पाठ किया हो वो जर्जरित ग्रंथ का कोई दर्शन करा दे तो वो स्वर्ग है, क्योंकि ग्रंथ पक जाते हैं साहब! पाठक के द्वारा ग्रंथ पकता है। तो मेरे कहने का मतलब बहुत पाठ हुआ हो एक 'बाईबल' पर, एक 'कुर्रान' पर, एक 'धर्मपथ' पर, एक 'गीता' पर, 'भागवत' पर तो वो ग्रंथ स्वयं शाश्वत स्वर्ग जैसा बन जाता है। 'गुरुग्रंथसाहब' का कितना पाठ होता है? 'गुरुग्रंथसाहब' स्वयं सूक्ष्म रूप में एक स्वर्ग बन जाता है। तो उसको भी स्वर्ग माना गया है। गुरु परंपरा में, हमारी प्राचीन परंपरा में प्राचीन पदों में भी गुरु की चरण की रज स्वर्ग माना जाता है।३

एक दिन मैंने आपको चाणक्य की बात बताई कि स्वर्ग किसको कहते हैं, नर्क किसको कहते हैं? मैं दोहराकर आगे बढ़ूं कि अनेक लोक है इस ब्रह्मांड में, इस निहारिका में; इस आकाशगंगा में कितनी पृथ्वियां है? तो देर-ब-देर कहीं दूर कोई स्वर्गलोक, ऐसा लोक निकाले भी तो स्वागत है, बाकी वो मिलने पर भी क्या फायदा जब भीतर का स्वर्ग न पाया जाये? वो अंतरिक्ष स्वर्ग की प्राप्ति न हो, तो मूलत: हमारी यात्रा स्वगमन की यात्रा है। इसी रूप में 'मानस' में स्वर्ग चर्चा की है।

कुछ कथा का दौर मैं आगे बढ़ाऊं। कल संक्षेप में कुछ प्रसंगों का दर्शन किया हमने। आज धनुषयज्ञ का दिन है। विश्वामित्र दोनों राजकुमारों को लेकर धनुषयज्ञ में आते हैं। हजारों लोग धनुषयज्ञ की रंगभूमि में बिराजित है। सबकी अपनी-अपनी भावना और रुचि के अनुकूल सब परमात्मा का दर्शन भिन्न-भिन्न रूप में कर रहे हैं। सबसे ऊंचा एक मंच था जहां बैठनेवाला सब को देख सके और सब मंचस्थ को देख सके ऐसे मंच पर मुनिसहित राम-लक्ष्मण बिराजित हुए। यहां जानकीजी अपनी सखियों के संग अपनी विशिष्ट व्यवस्था में आकर

बैठी है। सुनयना आदि सब बिराजमान है; जनकजी है। पूरा मंडप भरा हुआ है। बंदीजनों ने उद्घोषणा की। एक के बाद एक राजे-महाराज सब खड़े होते हैं। धनुष उठता नहीं और लज्जित होकर लौटते हैं। कोई धनुष नहीं तोड़ पाया। परिस्थिति का अवलोकन करते हुए जनक कुपित हो उठे। तुलसी का ये मनोविज्ञान है कि कभी-कभी बहुत ज्ञानी आदमी भी परिस्थिति अपने मन के अनुकूल नहीं बनती तब गुस्सा कर देते हैं, ये स्वाभाविक बात है।

तो जनक महाराज एकदम क्रोध में आ गये। एकदम रोष में डूबे हुए शब्द। तीन लोग क्रोध करते हैं इस प्रसंग में। एक तो जनक, जिसने शुरूआत की। फिर लक्ष्मणजी कुपित होकर बोले और बाकी बाबा परशुराम आये। तीन प्रकार का कोप। और एक का सत्त्वगुणी क्रोध है; एक का रजोगुणी क्रोध है; एक का तमोगुणी क्रोध है। तीन प्रकार के क्रोध का संगम हुआ। यहां जनक महाराज बहुत कुपित हो गये। द्वीप-द्वीप से आप लोग आये हैं मेरी प्रतिज्ञा सुनकर; धनुष तोड़ना-चढ़ाना दूर की बात, तिल के दाने की जितनी जगह आप हटा भी नहीं पाये! मुझे पहले से ज्ञात होता कि मेरी बेटी को ब्याहे ऐसा संसार में कोई भी नहीं तो मैं उपहास के पात्र नहीं बनता। आप सब जानकी को प्राप्त करने की आशा छोड़कर अपने घर चले जाओ। इस धरती पर कोई वीर बचा नहीं है।

यहां रघुबीर की हाजरी है। दो रघुवीर बैठे हैं। राम भी रघुवीर है, लक्ष्मण भी रघुवीर है। और उसकी उपस्थिति में बोल दिया जनक ने कि वीरविहीन ये पृथ्वी हो चुकी! सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत कुपित हुए। महाराज, जनक अनुचित बोल रहे हैं। आप यहां विद्यमान है और ये ऐसा बोल रहे हैं? या तो जनक को कहो अपने शब्द वापस करे या तो मुझे आप आज्ञा दे दे। भगवान राम ने संकेत किया। लखन, जब तक बाबा की आज्ञा न हो तब ऐसा बोलना ठीक नहीं। विश्वामित्रजी समझ गये कि प्रभु कुछ नहीं बोल रहे; मेरी ओर संकेत कर रहे हैं। हे तात, उठो, धनुष तोड़ दो और जनक महाराज का एक संताप है, एक विवेकी आदमी चिंतित है उसकी चिंता मिटा दो, धनुष तोड़ो।

गुरु की आज्ञा पाते ही गुरु को प्रणाम करके भगवान खड़े हुए। एकमात्र राम ही धनुष तोड़ पाये क्योंकि सब नुगरे हैं। राम गुरुवान है। नुगरा अहंकार नहीं तोड़ पायेगा। तो गुरु की आज्ञा-आशीर्वाद लिया। मंच पर राघवेन्द्र खड़े होते हैं। कैसे धनुष उठा, कैसे पकड़ा, कैसे टूटा, कोई नहीं देख पाये! केवल आवाज़ सुनी कि कुछ टूटा। एक क्षण के मध्य भाग में धनुष टूटा है। देवता, राक्षस और मुनि लोगों ये आवाज़ सुनकर इतना चौंक गये, क्या हुआ? किसी के पास जवाब नहीं तब मेरे गोस्वामीजी ने उद्घोषणा की, राम ने धनुष तोड़ा। भगवान राम ने धनुष के दो टुकड़े धरती पर फ़ेंक दिये। जानकीजी को ले आये। जयमाला पहना दी गई। जयजयकार हुआ। इतने में ही परशुरामजी आ गये। परशुराम और लक्ष्मण का संवाद हुआ और उसके बाद परशुरामजी चले गये। पत्र तैयार हुआ और पत्र लेकर दूत अयोध्या गये। महाराज दशरथजी बारात लेकर आये। 'मंगल मूल लगन दिन आवा।' शुक्ल पंचमी के दिन, गोरज बेला। राम की दुल्हे की सवारी निकली। चारों भाईयों की शादी। जनकपुर की चार कन्याओं। राम के साथ जानकी, लखन के साथ ऊर्मिला, शत्रुघ्न के साथ श्रुतकीर्ति और मांडवीजी भरतजी के साथ; चारों का ब्याह हुआ है। कुछ दिन बारात रोकी गई। फिर बिदा दी और चारों राजकुमार को ब्याह कराके दशरथजी अयोध्या आये। जयजयकार हुआ। सब मेहमान बिदा हो गये। आखिर में विश्वामित्रजी ने भी बिदा ली।

किसी भजनानंदी की माला का दर्शन स्वर्ग-दर्शन है। यस, नो डाउट। कोई फ़कीर की तस्बीह जिस पर उसने खाविंद को बहुत भजा हो, अल्लाह को पुकारा हो ऐसे कोई फ़कीर की तस्बीह का दर्शन स्वर्ग है। एक ही ग्रंथ पर किसी साधु-संत ने पूरी ज़िंदगी पाठ किया हो वो जर्जरित ग्रंथ का कोई दर्शन करा दे तो वो स्वर्ग है, क्योंकि ग्रंथ पक जाते हैं साहब! पाठक के द्वारा ग्रंथ पकता है। बहुत पाठ हुआ हो एक 'बाईबल' पर, एक 'कुर्रान' पर, एक 'धर्मपथ' पर, एक 'गीता' पर, 'भागवत' पर तो वो ग्रंथ स्वयं शाश्वत स्वर्ग जैसा बन जाता है।

मानस स्वर्ग ९

राम का आश्रय ही स्वर्ग है

'मानस-स्वर्ग', जिसकी हमने कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा गुरुकृपा से की संवाद के रूप में; उसकी कुछ उपसंहारक बातें आखरी बार कह हम विराम की ओर चलें। 'बालकांड' संक्षेप में कल पूरा दिया गया। 'अयोध्याकांड' की तीन बातों का स्मरण करके हम आगे निकल जाये। 'अयोध्याकांड' का पहला भाग है अत्यंत सुख। 'अयोध्याकांड' का मध्य भाग है अत्यंत दुःख। और 'अयोध्याकांड' का अंतिम भाग है नितांत शरणागति। राम ब्याहकर आये उसके बाद अयोध्या में जो सुखवृत्ति हुई है इसका बहुत भूरिशः वर्णन तुलसी ने किया। पूर्व भाग बहुत सुख लेकिन रामवनवास हुआ तो इतनी ही पीड़ादायक घटना घटी। तो राज्य अभिषेक न हो पाया, राम वन में गये और दारुण घटना घटी। अवधपति ने प्राणत्याग कर दिये और भरत ने राज्य कुबूल करने को मना कर दिया। पूरी अवध को लेकर चित्रकूट गये। बहुत बड़ी चर्चाएं हुई। आखिर में पादुका लेकर लौटे। पादुका को राज्य समर्पित करके नंदिग्राम में कुटिया बनाकर भरत शरणागत भाव से भजन में डूब गये। ये 'अयोध्याकांड' का केवल सूत्र स्मरण। उसके बाद आता है 'अरण्यकांड।' उसमें पहला प्रकरण है, परमात्मा बहुत प्रसन्नता से चित्रकूट में मौज कर रहे है; यहां तक कि 'एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।' एकांत में बैठकर जानकीजी को शृंगार करते हैं वनवासी राम। जयंत की कथा आई। उसके बाद प्रस्थान। और अनसूया के आश्रम में, अत्रि के आश्रम में आये। वहीं से यात्रा आगे बढ़ी। ये परमात्मा के अवतारकार्य के अंतिम अध्याय की यात्रा है। सरभंग, सुतीक्ष्ण और कुंभज ऋषि को मिलते हुए प्रभु गीधराज जटायु से मैत्री करके पंचवटीवास करते हैं। पंचवटी में एक दिन लक्ष्मणजी ने पांच प्रश्न पूछे। बड़े आध्यात्मिक प्रश्न पूछे जिसका उत्तर राघवेन्द्र ने दिया जो हमारी जीवन की पंचवटी के लिए बहुत उपयोगी है। उसके बाद शूर्पणखा का आगमन हुआ। दंड़ित हुई। खर-दूषण को वीरगति हुई। और शूर्पणखा ने जाकर रावण को उकसाया। रावण ने योजना बनाई सीता के अपहरण की। इससे पहले प्रभु ने योजना बनाई; सीता को अग्नि में निवास कराकर कहा कि प्रतिबिंबित रूप मेरे पास रखो; अब लीला का आखिरी भाग है। जानकी ने प्रतिबिंबित रूप रखा। मारीच को लेकर रावण आया। माया सीता का अपहरण हुआ। जटायु और रावण का द्वन्द्व युद्ध हुआ। जटायु वीरगति के लिए तैयार हुआ।

रावण जानकी को लेकर अशोकवाटिका में यत्नपूर्वक रखता है। यहां मारीच को निर्वाण देकर प्रभु लौटते हैं और जानकीहीन पंचवटी को देखकर प्राकृत लीला करते हुए भगवान जानकी के लिए वियोग में ज़ार-ज़ार रोये हैं। सीताखोज के लिए आगे बढ़े। जटायु को देखा। गोद में लिया। पितृतुल्य सम्मान देकर उसको सारूप्य मुक्ति प्रदान की। जटायु का उद्धार करके भगवान आगे बढ़े। कबंध नामक राक्षस मिला। आते ही कबंध का उद्धार किया। उसको भी दिव्य गति देकर प्रभु शबरी के आश्रम में आते हैं। भक्ति मति शबरी अपनी हीनता प्रगट करती है, मैं अधम हूं। प्रभु ने कहा कि मैं नौ प्रकार की भक्ति कहूं और ये नौ में से एक भी जिसमें हो वो मुझे अत्यंत प्रिय है। शबरी, आप में तो नौ की नौ भक्ति है। भगवान के सन्मुख योग अग्नि में देह को लीन करके शबरी वहां चली गई जहां से कभी लौटना न हो। शबरी का उद्धार करके प्रभु पंपासरोवर आये। वहां नारदजी मिलने आये। नारद ने संतों के लक्षण के बारे में पूछा और प्रभु ने संत और साधु के लक्षणों का गयन किया। हे नारद, साधु-संत के सद्गुण इतने होते हैं कि उसको सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते।

'किष्किन्धाकांड' के आरंभ में हनुमानजी और रामजी की भेंट हुई। और हनुमान के कारण सुग्रीव और राम का सख्य हुआ। हम कैसे ही जीव हो; अपने आप को कोसा मत करो कि हम दीन है, पापी है। है, है, लेकिन हनुमंत आश्रय करने से सुग्रीव जैसा विषयी, सुग्रीव जैसा वचन तोड़नेवाला, सुग्रीव जैसा भय और भागनेवाला ऐसा एक जीव

भी राम की मैत्री प्राप्त कर सकता है। 'हनुमानचालीसा' में हम पढ़ते हैं, 'तुम उपकार सुग्रीवहिं किन्हा।'

तो मेरे भाई-बहन, हम अपने जीवन को देखते हैं तो हम भी तो भयभीत रहते हैं; भागते रहते हैं; हम भी तो कमजोरी से ग्रस्त हैं; हम भी तो विषयी है, लोभी है, लोलूप है। हम भी परमात्मा को दिये हुए बचनों को भूल जाते हैं और भोगों में लिप्त हो जाते हैं। फिर भी यदि हनुमान-आश्रय करेंगे तो हम कैसे भी हो, स्वीकृत हो जायेंगे। और हनुमानजी की बात आई तो मैं कुछ बातें ओर कहते हुए आगे बढ़ूं। बात-बात में उसकी सहाय मत मांगा करो। जहां तक आप कर सको, अपने बस की बात हो उसमें हनुमानजी को इन्वोल्व न करो प्लीज़। रिज़र्व फोर्स जो होती है ना उसको रेग्युलर नहीं बनाई जा सकती। आर्मी का एक नियम है, ये रिज़र्व फोर्स है उसको अत्यंत विपत्ति की पल में लगाई जाती है। ये रेग्युलर पुलिस कर्मी नहीं है। आपको 'हनुमानचालीसा' की एक चौपाई की ओर इंगित करूं। 'हनुमानचालीसा' की बहुत प्यारी चौपाई।

दुर्गम काज जगत के जे ते।
सुगम अनुग्रह तुम्हरे ते ते।

हरेक काम में हनुमानजी को बीच में न डालो; दुर्गम काम में ही डालो। परमात्मा ने हमको बुद्धि दी है, विवेक दिया है। हम जितना कर सके, हम करें।

'हनुमानचालीसा' महामंत्र है। अभी एक भाग बाकी है। खुलकर चर्चा करेंगे उसकी विशद चर्चा यदि उस समय प्रवाह चला तो। जैसे कोई न कोई प्रवाह निकल जाता है। अनुग्रह तो उसका है ही। दो वस्तु याद रखना। दुर्गम काज में हनुमानजी को पुकारो। और दूसरा, वो भी हमें मौका देता है कि मेरा अनुग्रह तो तुझ पर है ही। लेकिन तू छोटी-छोटी बातों में मुझे डाल रहा है तो अनुग्रह महसूस नहीं कर पायेगा। अनुग्रह तो है ही। हमारा और आपका दिल निरंतर धड़कता है; महसूस करते हैं, कूदते हैं, खाते हैं, सो जाते हैं; क्योंकि ऐसा अनुग्रह परमात्मा का निरंतर है। तो 'हनुमानचालीसा' के इस शब्दब्रह्म गुरुकृपा से बहुत गहराई से समझने जैसे हैं। तो ऐसे रूप में हम हनुमंत का आश्रय करेंगे। इसका मतलब ये नहीं कहता कि आप 'हनुमानचालीसा' का पाठ न करो, प्लीज़। लेकिन हर वस्तु में उसको वो न करो। पूरे साल आप पढ़ाई न करो, होमवर्क न करो, क्लास एटेन्ड ना करो और एक दिन परीक्षा हो तब हनुमानजी के पास पांच सौ ग्राम पेंडा लेकर जाओ, सिंदूर लगाओ! हनुमानजी कहे, बच्चा बड़ी देर कर दी! परीक्षा है तो हम कुछ करें। हनुमानजी थोड़ा पेपर लिखने आयेगा? वो तो कर सकता है। क्यों न करे, लेकिन दुर्गम हो वहां पुकारो। अनुग्रह अनंत है। तो हनुमंत आश्रय से हमारे जैसे विषयी लोग भी रामसखा बन सकता है; ये द्वार है।

सुग्रीव से मैत्री हुई। वालि वध हुआ। सुग्रीव राजा हुआ। अंगद युवराज बना। प्रभु प्रवर्षन पर चातुर्मास करने के लिए बैठ गये। सुग्रीव भोग में गया और राम का कार्य भूल गया। चातुर्मास के बाद प्रभु थोड़ा उसको सावधान करने के लिए लक्ष्मण को भेजते हैं, लक्ष्मण, तू जा और सुग्रीव को जगा। सुग्रीव सभान हुआ। प्रभु की शरण में आया। भगवान ने क्षमा दी। जानकी की शोध का अभियान शुरू हुआ। पूरब, पश्चिम, उत्तर में बंदरों को भेजा। और दक्षिण दिशा में जानकी की खोज के लिए भेजा। जानकी है शक्ति। जानकी है शांति। जानकी है भक्ति। शक्ति की खोज करनी है, शांति की खोज करनी है और भक्ति की खोज करनी है तो दक्षिण की गति जरूरी है, वाम गति नहीं। वाम मानी उलटी गति। दक्षिण मानी सीधी गति। जो आदमी वाम गति करेगा वो भक्ति नहीं पायेगा, वो शांति नहीं पायेगा, वो शक्ति नहीं पायेगा। हम शांति खोजने के लिए कितने उलटे-सुलटे नेटवर्क बनाते हैं! इसलिए शांति नहीं मिलती; भूखे-प्यासे मर जाते हैं! लेकिन दक्षिण में जायेंगे तो कभी न कभी शांति की प्राप्ति हो जाएगी। मैं दूसरे से ज्यादा शक्तिमान हो जाऊं! क्या-क्या खेल करते हैं हम! भक्ति प्राप्त करने के लिए दंभ-पाखंड-दिखावा! तो दक्षिण दिशा में एक टुकड़ी को भेजने का निर्णय हुआ, जिसका मार्गदर्शक है जामवंत और नायक है अंगद। सब प्रभु को प्रणाम करके जानकीजी की खोज के लिए निकलते हैं। सबसे अंत में हनुमानजी ने प्रणाम किया। 'पाछे पवन तनय सिरु नावा।' जैसे हनुमानजी ने सबसे अंत में प्रणाम किया तो भगवान ने निकट बुलाकर सिर पर हाथ रखकर मुद्रिका दी कि जानकी मिले तो मेरा संदेश देना और

पहचान के लिए मुद्रिका देना। भक्ति की शोध करनी है, शांति प्राप्त करनी है, शक्ति प्राप्त करनी है तो स्पर्धा न करो कि मैं सबसे आगे रहूं। क्योंकि लोगों को क्या है, मैं आगे नहीं रहूं और आगे रहनेवाले शांति ले जाये! नहीं; शक्ति, भक्ति और शांति अंध नहीं है। तुम जहां हो तुम्हारी भूमिका देखकर खुद आ जाएगी इसलिए दौड़ा-दौड़ी न करो। जीवन का बहुत प्यारा मार्गदर्शन है 'रामचरितमानस।'

तो बाप! ये टुकड़ी यात्रा करती है। गहन जंगल में एकदम सब खो जाते हैं। फिर हनुमानजी आगे आ गये। संकट के पल में हनुमानजी ने सबको लीड किया। सुख में पीछे रहो। परिवार में दुःख आये तो कूदकर आगे आ जाओ। सुख हो तो पूरा परिवार सुखी रहे, मैं पीछे भला। हर कदम पर 'मानस' मार्गदर्शक है। हनुमानजी आगे हो गये। हम दुनिया के सामने व्यवहार में एकता दिखाते हैं और जब परमार्थ की बातें हो तब एक-दूसरे की निंदा करते हैं, स्पर्धा करते हैं, इर्ष्या करते हैं! सोचो। स्वार्थ में बिलग-बिलग रहो। स्वार्थियों का संगठन नहीं होना चाहिए, परमार्थियों का संगठन होना चाहिए। स्वार्थ का सम्मेलन राजनीति है, पोलिटिक्स है। ये हमारा पारमार्थिक मिलन है, स्वार्थीय मिलन नहीं है। और परमार्थ में इकठ्ठे हो जाओ। सब अपने-अपने धंधे में, काम में लगे रहो। 'मानस' के सूत्र जो सुने हो उसका व्यवहार में सदुपयोग करो। जीवन में शांति मिलेगी, भक्ति मिलेगी, शक्ति मिलेगी। मेरा कहने का मतलब ये है कि जानकी की खोज में सब इकठ्ठे हो गये। रामकार्य के लिए सब इकठ्ठे हुए हैं; शक्ति की खोज, शांति की खोज के लिए सब इकठ्ठे हुए। स्वयंप्रभा नामक तपस्विनी मिलती है और वो मार्गदर्शन करती है। आंखें बंद करो, मैं आपको समुद्र के तट पर पहुंचा दूंगी। और आंखें खोलोगे ही नहीं तो सीता तक पहुंचा दूंगी। क्योंकि भक्ति पाने के लिए, शक्ति पाने के लिए, शांति पाने के लिए थोड़ा अंतर्मुख होना जरूरी है। लेकिन हम अंतर्मुख नहीं हो पाते! आंखें बंद करो न करो ये स्थूल वस्तु है, लेकिन अंतर्मुख हो।

सब समुद्र के तट पर आये। वहां संपाति मिला। संपाति ने भी मार्गदर्शन किया कि मैं यहां बैठे-बैठे देखता हूं, सीता अशोकवाटिका में है। ये शतजोजन समंदर लांघकर कोई जाएगा वो सीता को पायेगा। अब जाये कौन? जामवंतजी बूढ़े हैं; कहते हैं, मैं कैसे करूं? जुवानी में तो मैं इतना कर सकता था; अब क्या करूं? युवराज अंगद कहता है, मैं जुवान हूं, जाऊं तो सही लेकिन लंका में जाने के बाद लंका की रमणीयता, लंका का विषय भोग उसमें लिप्त हो जाऊं तो लौट ना सकूं! तो पार जाने में सबको संशय रहा तब हनुमानजी चुपचाप अंतर्मुख बैठे हैं और वहां जामवंत ने हनुमानजी को आह्वान किया कि हे पवनपुत्र, आप चुप क्यों है? आपका अवतार ही तो रामकार्य के लिए है और आप मौन क्यों? हनुमानजी ने सुना कि मेरा अवतार रामकार्य के लिए है, पर्वत आकार हो गये बाबा! गर्जना की। जामवंतजी को प्रणाम किया और कहा कि मुझे आप सिखावन दो, लंका में जाकर मुझे क्या करना है वरना मैं सब चौपट कर दूंगा। युवानों, मेरे भाई-बहन, तुम्हारी शक्ति जागृत हो जाये; तुम बहुत ऊंचाई पकड़ो; तुम बहुत उत्कर्ष करो तब भी कुल के बुजुर्गों का मार्गदर्शन लेना। जो वडील होते हैं उसको पूछना। कहीं हमारी उर्ध्वगति हमसे कोई अधम कृत्य न करवा दे! ऐसा मत समझना कि ये बूढ़े लोग आउट डेटेड है। तुम शांति से सोचो। तुम्हारे माता-पिता आपको लगता हैं कि ये पुराने हैं! तुम्हारे बच्चे को आप भी पुराने लग रहे हो! जामवंत ने हनुमानजी को कहा, ओर कुछ नहीं करना है। महाराज, लंका जाओ; माँ मिले सीता तो मुद्रिका देना; संदेश देना; संदेश लाना; कोई निशानी दे तो ले आना। और जब आप लौट आयेंगे। आप भगवान को खबर करेंगे फिर परमात्मा कपि की सेना लेकर लंका जायेंगे और लंका विजय होगी और भगवान के साथ हमारी कीर्ति भी गाई जाएगी। यहां 'किष्किन्धाकांड' विराम लेता है।

'सुन्दरकांड' के आरंभ में हनुमानजी रघुवीर को बार-बार याद करके पहाड़ पर चढ़कर छलांग लगाते हैं। रास्ते में कुछ विघ्न आये क्योंकि भक्ति, शक्ति और शांति पाने में इस यात्रा में कुछ विघ्न तो आयेंगे। लेकिन भगवत आश्रय लेकर कोई उड़ान भरेगा तो विघ्न आशीर्वाद दे कर चले जाते हैं। श्री हनुमानजी उड़ान भरते हैं। लंका में प्रवेश करते हैं। कहीं जानकीजी नहीं दिखाई दी तब हनुमानजी खोजते-खोजते एक भवन के आंगन में गये तो वहां एक मंदिर था, तुलसी के पौधे थे और भवन पर रामनाम अंकित था। हनुमानजी को लगा, लंका में तो

राक्षसों का निवास; यहां सज्जन कैसे? श्री हनुमानजी महाराज विभीषण से मिलते हैं। विभीषण युक्ति बताते हैं और हनुमानजी जानकीजी तक पहुंच जाते हैं। आखिर में माँ को संदेश दिया। माँ का आशीर्वाद दिया। अशोकवाटिका में फल खाये। लंका में बंदी बनाकर ले जाये गये हनुमानजी को। आखिर में लंकादहन।

माँ से चूडामणि लेकर लौट आये। मित्र जयजयकार करने लगे। सुग्रीव के पास गये और फिर सब राम के पास गये। हनुमानजी ने संदेश दिया। भगवान चूडामणि को हृदय से लगाकर जानकी की याद में संदेश सुनते हैं। अब विलंब न करे। राम की पूरी सेना प्रस्थान करती है। समंदर के तट पर आई। अब क्या करे? इतना बड़ा समंदर! यहां लंका में हलचल मच गई। विभीषण ने रावण को समझाने की कोशिश की। असफल। विभीषण को निकाल दिया कि तुम चले जाओ। और विभीषण भगवान की शरण में आये। प्रभु ने रखा। तीन दिन भगवान समंदर के तट पर प्रार्थना कर रहे हैं कि आप हमें मारग दो। जड़ता के कारण समुद्र ने कोई जवाब नहीं दिया तब प्रभु थोड़ा रोष दिखाते हैं। समुद्र घबरा गया। ब्राह्मण के रूप में मोतीयों का थाल लेकर हरि की शरण में आया। कहा, महाराज, आप सेतु बनाओ। मैं भी सहायता करूंगा। प्रभु को सेतुबंध का, जोड़ने का प्रस्ताव अच्छा लगा। 'सुन्दरकांड' पूरा हुआ।

'लंकाकांड' के आरंभ में सेतुबंध की रचना हुई। भगवान रामेश्वर की स्थापना हुई और त्रिभुवन में जयजयकार हुआ रामेश्वरजी का। 'नमः पार्वती पतये हरहर महादेव।' और 'आया सावन झूम के।' कल से सावन शुरू हो रहा है; महादेव की पूजा के दिन; पहला सोमवार है साहब! रामेश्वर की स्थापना की। एक-दो मंत्र 'रुद्राष्टक' के गाइयें-

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।
नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।

रामेश्वर भगवान की स्थापना हुई। भगवान की सेना पार हुई। अंगद को भेजा संधि के लिए। संधि सफल न हुई। युद्ध अनिवार्य हुआ। धमासान युद्ध होता है। एक-एक राक्षसों का निर्वाण होने लगा। आखिर में इकतीस बाण चढ़ाकर परमात्मा ने रावण को निर्वाण दिया। रावण का तेज प्रभु में समा गया। मंदोदरी ने प्रभु की स्तुति की। रावण की अंतिम क्रिया हुई। विभीषण को लंका का राजा बनाया। जानकीजी अग्नि से बाहर आई। प्रभु ने कहा, अब विलंब न करे; अयोध्या चले। चौदह साल पूरे होने को है। पुष्पक विमान तैयार हुआ। सखाओं को लेकर भगवान विमान में आरूढ़ हुए और विमान से जानकी को रणमैदान और सेतुबंध का दर्शन कराते हुए महात्माओं के आश्रम में जाते-जाते प्रभु शृंगबेरपुर ऊतरते हैं। हनुमानजी को भरत को खबर देने के लिए भेज देते हैं। भरत को खबर मिली। यहां 'लंकाकांड' पूरा हुआ।

'उत्तरकांड' में भरतजी को खबर दे दी गई और प्रभु को कहा, विलंब न करे। प्रभु अयोध्या आये। भरत को मिले। सबको मिले। अमित रूप लेकर प्रत्येक का आत्म साक्षात्कार सिद्ध किया। सबसे पहले प्रभु कैकेई माँ के भवन में गये उसके बाद माँ कौशल्या को मिले। जानकी को देखकर सबकी आंखें भर आई। वशिष्ठजी ने कहा, अब विलंब न करे। दिव्य सिंहासन लाओ। और राम का राजतिलक करते हैं। चारों भाई तैयार हुए। पृथ्वी को, सूर्य को, दिशाओं को, ऋषिमुनियों को, ब्राह्मणों को, प्रजाजनों को, माताओं को, गुरु को, मित्रों को सबको प्रणाम करते हुए रामभद्र सीता सह सिंहासन पर विराजमान हुए। और विश्व को रामराज्य देते हुए भगवान वशिष्ठजी ने प्रभु के भाल में तिलक किया। त्रिभुवन में जयजयकार हुआ। भगवान की आरती हुई। चार वेद आये। प्रभु की स्तुति करके बिदा हो गये। उसके बाद भगवान महादेव आये। प्रभु की स्तुति करके भक्ति का दान लेकर महादेव चल देते हैं। दिव्य रामराज्य की स्थापना हुई। छः मास बीत गये। हनुमानजी को छोड़कर अन्य मित्रों को विदा दी। हनुमानजी अयोध्या में रहे। समयमर्यादा पूरी हुई। प्रभु की नरलीला। जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया। ऐसे ही तीनों भाईयों के घर भी दो-दो पुत्र प्रगट होते हैं।

रघुवंश के वारिस का नाम देकर तुलसी रामकथा पर रोक लगा देते हैं। जानकीजी का सगर्भा स्थिति में दूसरी बार का वनवास ये विवादित बात तुलसी को सह्य नहीं है इसलिए 'मानस' में नहीं लिखते हैं। तुलसी केवल संवाद की बात करते हैं। राज्य अभिषेक होने के बाद ये छबी जन-जन के हृदय में ऐसे ही बसी रहे इस हेतु से तुलसी आगे की कथा नहीं लिखते। उसके बाद तो बाबा कागभुशुंडिजी का जीवनचरित्र है। गरुड उनसे कथा सुनता है और सात प्रश्न का उत्तर पाकर गरुड वैकुंठ सिधारते है। यहां भगवान शिव पार्वती से कहते हैं, तुम्हें कुछ सुनना है? बोले, आपकी कथा सुनकर मैं कृतकृत्य हुई, लेकिन तृप्ति नहीं हो रही। भवानी धन्य हुई। याज्ञवल्क्य बाबा ने भरद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं ये स्पष्ट नहीं है। और पूज्यपाद गोस्वामीजी अपने मन को कथा सुनाते हुए हमें अंतिम संदेश देते हैं-

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि।।

इस कलियुग में हम जैसे जीवों को ओर कौन साधन है? राम को स्मरो, राम को गाओ, राम को सुनो; जिसका नाम पतित पावन है, बड़े-बड़े पतितों का इस नाममात्र ने उद्धार किया है गणिका, अजामिल आदि-आदि।

चारों आचार्यों ने अपने-अपने श्रोताओं के सामने कथा को विराम दिया। आज इन चारों आचार्यों की अहेतु कृपाछाया में बैठकर हम और आप नौ दिन से रामकथा का गायन कर रहे थे, वहां मेरी व्यासपीठ भी विराम देने की ओर है तब जो कुछ समय है उसमें मैं आपसे बातें कर लूं। 'मानस-स्वर्ग', नौ दिन तक हमने स्वर्ग की चर्चा की। 'कठोपनिषद' का एक मंत्र है। इस मंत्र का कृपया हम सब उच्चारण करें-

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन्।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।।

यहां स्वर्ग का संकेत है। जिस स्वर्ग की खोज में हम नौ दिन की यात्रा कर रहे थे। यहां लिखा है, आदमी प्राण से नहीं जीता है। कितनी बड़ी सदियों की, युगों की, भ्रांति को उपनिषद तोड़ रहा है! हम सब कहते हैं, प्राण से जी रहे हैं। अरर्र! प्राण चला गया! आदमी मर गया! उपनिषद कहते हैं, प्राण से कोई नहीं जीता। प्राण से न जीवन है, प्राण जाने से न मृत्यु है। विश्व की कोई चिंतनधारा इतनी ऊंचाई को छू नहीं सकी। ये हमारे लिए गौरव है। आज तक हम सोचते, कोई भी प्राणी गया मर गया। जो पंचप्राण है- पान, अपान, समान, उदान, व्यान उसमें ये होने से आदमी मर जाता है। लेकिन उपनिषद स्पष्ट कहते हैं, जीनेवाला आदमी प्राण चले जाने से कभी मरता नहीं है। ये तो गजब की बात है!

मैं आपसे एक तर्क से पूछुं प्लीज़, सुनिये। एक हाथ कट जाये, एक आंख फूट जाये; दोनों फूट जाये चलो, तो हम मर जाते हैं? अंध हो जाते हैं, मर नहीं जाते। एक आंख फूटने से कोई मरा नहीं है। एक पैर कटने से आदमी लंगडा होता है, मर नहीं गया। हाथ कटने से आदमी ठूंठा होता है, मर नहीं गया। वैसे ही प्राण जाने से कोई नहीं मरता। तो आदमी जीता कैसे है? 'इतरेण तु जीवन्ति', कोई दूसरा ही तत्त्व तुझे जीला रहा है। जो दूसरा जीला रहा है, उसी का नाम स्वर्ग है। ये कौन है? कोई गुमनाम। यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।' ये जो जीला रहा है, प्राण नहीं, याद रखना। इस कथा का आखिरी सूत्र याद रखना कि हम आंख फूट जाये तो नहीं मरते वैसे प्राण चले जाये तो मरते नहीं। नई-नई टेकनोलोजी आ रही है। नई-नई विधा आ रही है। प्राण तीन दिन चला भी जाये ना, डोक्टर उसको जीवित कर सकता है। क्योंकि प्राण जाने से आदमी प्राणहीन हुआ है, मरा नहीं। ये भारत ही कह सकता है। अमरिका का, दूसरे किसी मुल्क का काम नहीं। ये निवेदन एक क्रांतिकारी निवेदन है। तो कौन जीला रहा है हमें? कोई इतर तुझे जीला रहा है। तो इस 'कठोपनिषद' का जवाब 'मानस-उपनिषद' में लिखा है, 'मानस' में। 'प्रान प्रान के जीव जीव के जिव सुख के सुख राम।' प्राण का एक प्राण है उसका नाम राम है। प्राण नहीं जीला रहा है। प्राण का प्राण जो राम है, वो हमें जीला रहा है। और इस राम का जो आश्रय करे वो ही स्वर्ग है; ओर कोई स्वर्ग नहीं। इसलिए 'ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई।' हे जीव, तू राम भज। आखिर इतना ही कि राम स्वर्ग है, जो हमें जीला रहा है। हमारे हाथ का हाथ राम है। जीव का जीव राम है। प्राण का प्राण राम है। आंखों की आंख राम है। पैर के पैर राम है। ये हमें जीला रहा है।

तो हम नौ दिन राम में जी रहे थे इसलिए स्वर्ग में थे, स्विट्ज़रलेन्ड में नहीं थे। ये तो स्थूल स्वर्ग है अवश्य, सुंदर-रमणीय, नो डाउट; कितना प्यारा प्रदेश सुंदर है! लेकिन असली स्वर्ग तो हम नौ दिन जो जी रहे हैं। राम-आश्रय स्वर्ग है। मुझे आज पूछा गया; नियतिवाला प्रश्न बहुत को हुआ है। मुझे आज ये भी भारत से पूछा गया कि बापू, आपने नियति की बात की वैसे तो बहुत अच्छा लगा लेकिन नियति का ही स्वीकार करना हो तो कृपा पक्ष का क्या? सद्गुरु का क्या? ईश्वर का क्या? भजन का क्या? प्यारे प्रश्न है। जो नियति ही है सबकुछ तो भजन क्यों करें? भजन करना ही तुम्हारी नियति है। सब क्यों नहीं कर सकते? क्यों? Why? तुम्हारे पास पैसे है, संपदा है, समय भी है। झूठी दलील न करो कि हमारे पास समय नहीं। समय भी है, तुम्हारी नियति भजन की नहीं है। नियति की छाया में भजन छोड़ना नहीं है। तुम्हारी नियति में सद्गुरु है तो खोजता-खोजता आयेगा। ये नियति है। नियति यदि अंतिम सूत्र जो इस कथा का है तो परमात्मा ही नियति है; हमारे सद्गुरु ही हमारी नियति है। और भजन ही हमारी नियति है। बीच-बीच में यदि भजन खंडित हो जाये तो भी समझना, शायद ये भी नियति है। कौन करा रहा है? हम क्या साधन कर सकते हैं? हम क्या कर सकते हैं? नियति मानी मैं बहुत आखरी ऊंचाई से शब्द का प्रयोग करता हूं। नियति का शब्दकोश में आप अर्थ खोजने जाओगे तो डांवाडोल हो जाओगे! केवल व्यासपीठ को ध्यान में रखना। इधर-उधर गये तो भटक गये! पंडित लोग तैयार है भटकाने के लिए! वो वास्तव में कुछ नहीं जानते, केवल शब्द जानते हैं।

मैं बहुत जिम्मेवारी के साथ बोला हूं। तीन दिन से नियति की चर्चा कर रहा हूं। बिलग-बिलग मिसालें देकर इस नियति का स्वागत करो कि मेरी नियति भजन है; मैं हरि भजूं; मेरी नियति मेरा सद्गुरु है। हमारी नियति कौन? हमारा आखिरी निर्णायक कौन? मेरा सद्गुरु। गुरुकृपा ही केवलम्। हमारी नियति भगवान राम। हमारी नियति भगवान महादेव। ओर कौन? जैसे मैंने कहा कि अवतार के रूप में जब परमात्मा आया तो नियति को तोड़ नहीं पाया। कर सकता था। कृष्ण ने नियति नहीं तोड़ी। राम अयोध्या में बैठे-बैठे रावण को

मार सकते थे। ये नौ दिवस की कथाएं नहीं करनी पड़ती। एक दिन में पूरी हो जाती! और इतना खर्चा बच जाये! 'नियति' यहां सर्वोच्च शब्द है। सर्वोच्च आश्रय है नियति का आश्रय। तुम स्वीकार करो। कितना समझाया कृष्ण ने लेकिन आखिर में अर्जुन ने नियति कुबूल की। 'करिष्ये वचनं तव।' बात खतम! अब तू कहे तो लडूं; तू कहे तो मरूं; तू कहे तो संन्यासी हो जाऊं। नियति मानी परम स्वीकार जो है। और परम स्वीकार ये परमात्मा है; ब्रह्म है। अवतार के रूप में आये तो नीति-नियम लागू हो जाते हैं। नियति के नाम से भजन छोड़ना मत। छोड़ भी नहीं पाओगे। ये कुछ महसूस करने की ही बात है, उसको कैसे मैं समझाऊं?

तो सद्गुरु का क्या? ईश्वर का क्या? ऐसा जो प्रश्न मुझे पूछा गया। आखिरी संदेश सुन लीजिए, मैं भी सुनूं, आप भी सुनो। ये आखिर तो 'मानस' का संदेश है, मुझे भी सुनना है। प्राण जाने से कोई मरता नहीं, प्राण रहने से कोई जीता नहीं। प्राण का प्राण परमतत्त्व है, उसीके आश्रय से आदमी प्रसन्न है। और ये परम आश्रय ही स्वर्ग है। 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।' ये ही स्वर्ग है। तुषारभाई ने कविता भेजी है उसका भी साथ-साथ पाठ कर लूं।

गहन गगननी पार हशे स्वर्ग
के हशे अटल सागरमां?
स्वर्गनी समजण एटलुं कहेती के
मारुं स्वर्ग छे मारा घरमां।

तो बाप! 'मानस-स्वर्ग' के बारे में कुछ हम और आप मिलकर शास्त्रों की कृपा, संतों की कृपा, विद्वानों की कृपा, ग्रंथों की कृपा, गुरु की कृपा और सबसे बड़ी आत्मकृपा इनके द्वारा हम कुछ संवाद कर बैठे ये नौ दिन 'मानस-स्वर्ग।' एक केन्द्रबिंदु बना कर परिक्रमा कर रहे थे। आज इस वैचारिक परिक्रमा का विरामदिन है। तो बाप! आखिर में पूरे आयोजन के लिए मेरी पूरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। पूरा जसाणी परिवार और उनके साथ छोटे-बड़े सब सेवा करने के लिए आये भाई-बहन, परिवार के सब भाई-बहन, आप सभी मेरे श्रोता भाई-बहन, यहां के लोगों, सभी के प्रति मैं मेरी बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। ओर तो मैं क्या कहूं? इतना ही कहता रहता हूं, खुश रहो बाप, खुश रहो। मुझे टीना पूछ रहा था, बापू, किसी की कोई शिकायत हो तो बताना। बेटा, मैंने कहा, कोई शिकायत नहीं। सब प्रसन्न है।

भगवत इच्छा से आयोजित नौ दिवसीय रामकथा 'मानस-स्वर्ग' विराम की ओर जा रही है तब इस नौ दिवसीय रामकथा का फल स्थूल स्वर्ग में हो वो भी और सूक्ष्म स्वर्ग की हम चर्चा कर रहे थे वो ही मानसिकता लेकर भीतरी स्वर्ग में जीते हो या तो बहिर् स्वर्ग, जो हो वो अल्लाह जाने; जो भी हो, जहां जो स्वर्ग को महसूस करते हो अपने-अपने स्वर्ग; इन सभी स्वर्ग महसूस करनेवालों को ये मेरी रामकथा समर्पित है। एक मिनट। मुझे कोई दस्तक दे रहा है कि आपने इस नौ दिवसीय कथा का फल जो स्वर्गीय जीवन जी रहे हैं उसको तो दिया लेकिन वो लोग कुबूल नहीं कर रहे हैं कि हम ओलरेडी सुखी है इसलिए वापस लौटा रहे हैं। मैं पहली बार ऐसे कहता हूं लेकिन मुझे कोई दस्तक दे रहा है; ये जो है वो कहते हैं कि हम तो प्रसन्न है कथा सुनकर भी। इतना बड़ा फल हमको न दिया जाये; ये नौ दिवसीय फल इन सबको दिया था उसने वापस लौटाया, ऐसी मेरी आत्मा कह रही है। मैं ये नौ दिवसीय 'मानस-स्वर्ग' का फल नारकीय जीवन जीते हो उसको दे रहा हूं, क्योंकि जरूरी उनके लिए है। इसलिए मुझे बुज़ुर्ग कुछ कह रहे हैं कि जो नारकीय जीवन जीते हो, जिसके जीवन में खुशियां उठ गई है, जो परेशान-परेशान है उसे दो। आओ, हम सब ये वापस आया फल इन नारकीय जीवन जीनेवालों को दे दें। नर्क-स्वर्ग है कि नहीं मुझे खबर नहीं लेकिन ऐसे जीवन में जो त्रस्त है इन लोगों को हम फल देते हैं।

प्राण का एक प्राण है उसका नाम राम है। प्राण नहीं जीला रहा है। प्राण का प्राण जो राम है, वो हमें जीला रहा है। और इस राम का जो आश्रय करे वो ही स्वर्ग है; ओर कोई स्वर्ग नहीं। इसलिए 'ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई।' हे जीव, तू राम भज। आखिर इतना ही कि राम स्वर्ग है, जो हमें जीला रहा है। हमारे हाथ का हाथ राम है। जीव का जीव राम है। प्राण का प्राण राम है। आंखों की आंख राम है। पैर के पैर राम है। ये हमें जीला रहा है।

मानस-मुशायरा

कितना महफूज़ हूं मैं कोने में?
कोई अडचन नहीं है रोने में।
मैंने उसको बचा लिया वरना,
डूब जाता मुझे डूबोने में।

- फेहमी बढ़ायूंनी

ज़िंदगी से बड़ी सज़ा ही नहीं।
और क्या जुर्म है पता ही नहीं।
सच घटे या बढ़े तो सच न रहे,
झूठ की कोई इम्तिहां ही नहीं।

- क्रिष्न बिहारी 'नूर'

दीया हूं और दीये का फ़र्ज पूरा कर रहा हूं।
अंधेरों से कहो रोके मैं उजाला कर रहा हूं।
किसी तूफ़ान की साज़िश से मेरा कुछ न बिगड़ेगा,
अब कश्ती नहीं, खुद पर भरोसा कर रहा हूं।

- वसीम बरेलवी

उलझनों में खुद उलझकर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी ऊलझी हुई ज़ुल्फों को सुलझाने गये।
इससे बढ़कर क्या हमें मिलती दाद-ए-वफ़ा?
हम तुम्हारे नाम से दुनिया में पहचाने गये।

- पारसा जयपुरी

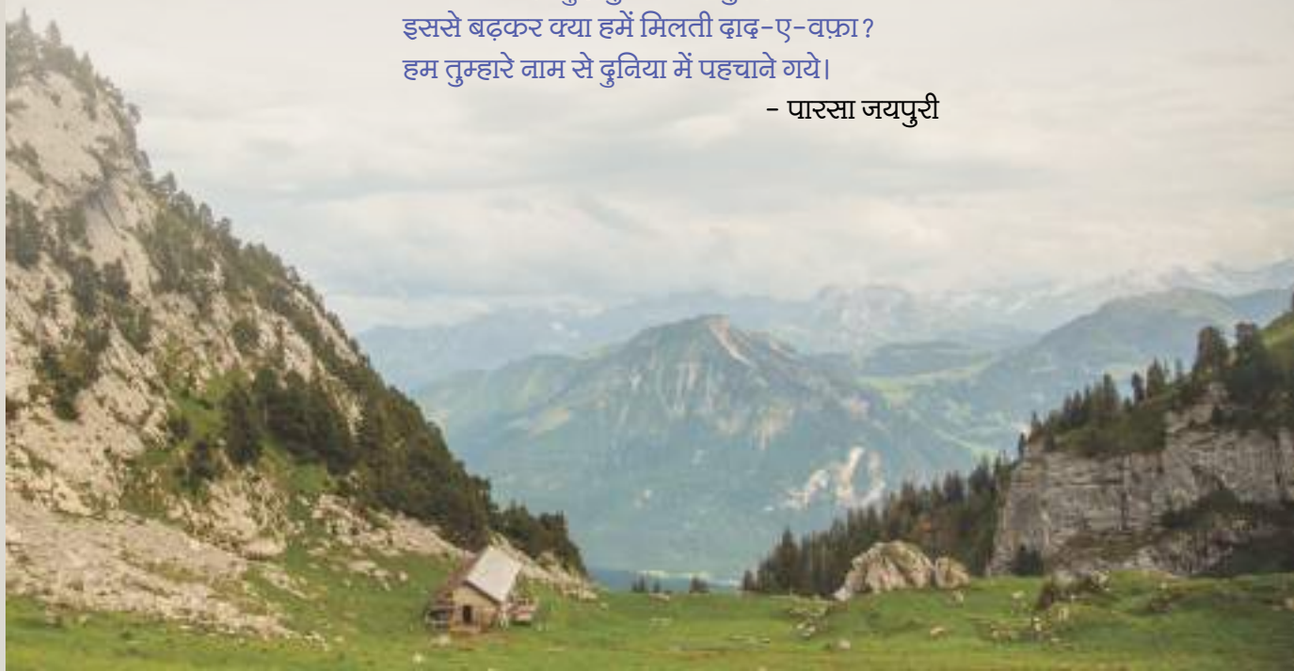

‘भगवद्गीता’ सत्य, प्रेम और करुणा की त्रिवेणी है

‘गीता-जयंती’ के अवसर पर जोडियाधाम में मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

बाप! सबसे पहले विरागमुनिजी की यह तपस्थली को प्रणाम। उनकी चेतना को प्रणाम। पूज्य शास्त्रीजी योगेश बापा, लाभुदादा, भगवान विश्वनाथ के प्रतिनिधि अनंतश्री विभूषित १००८ महामंडलेश्वर सतुआ बाबा, अनंत श्री विभूषित महामंडलेश्वर पूज्य वसंतदासजी बापू, सभी पूज्य चरणों में प्रणाम। ‘गीता विद्यालय’ के बच्चों को बहुत-बहुत दुलार। वैसे भारत की मनीषा तो यूं कहे कि ‘वसुधैव कुटुम्बकम्।’ पूरे जगत को हम परिवार मानते हैं। फिर भी हमारा एक छोटा-सा परिवार भी होता है। और ऐसा पूज्य कृष्णशंकरदादा का परिवार, ब्रह्मलीन पूज्य डोंगरेजी बापा का परिवार, हमारा सबका परिवार और मेरा त्रिवेणी-परिवार। आप सबको मेरा प्रणाम। मुझे कहा जाय कि यह विरागमुनि निर्मित परंपरा मैं आप कुछ बोले इसलिए बोल लूं। लेकिन अब बोलने का आनंद बहुत आता है इसलिए बोलना है। वरना मूक हो जाने का विचार आता है। लेकिन बोलने का आनंद बहुत आता है इसलिए बोलना बंद नहीं करना। दो दिन पहले की रात्रि में ‘महाभारत’ के कुछ प्रसंग की चर्चा बापजी करते थे तब मैंने कहा, यह धर्मक्षेत्र में ऐसा कहा कि भगवान के बहुत रहस्य जानने की इच्छा भी नहीं क्योंकि वह जान लेंगे तो फिर बोला नहीं जाय। और तलगाजरडा को तो अभी बहुत बोलना है। क्योंकि यह हमारा त्रिवेणी का स्वभाव है। ‘साधु तो चलता भला।’ यह तो है ही; लेकिन ‘साधु तो जागता भला।’ और ‘साधु भजता भला।’ और समय-समय पर ‘साधु बोलता भला।’ इसलिए बोलने का आनंद आता है तो कुछ बोलें।

‘भगवद्गीता’ स्वयं त्रिवेणी है ये कोई नई बात नहीं। जिसमें ज्ञान का प्रवाह, भक्ति का प्रवाह, कर्म का प्रवाह है। यह त्रिवेणी तो है ही। ‘भगवद्गीता’ प्रारंभ में प्रश्न पैदा करती है; बीच में भी प्रश्न है। मध्य में समाधान प्रगट करती है। और अंत में शरणागति का स्वीकार है। इसलिए ये भी त्रिवेणी है। सवालों, समाधान और शरणागति ये भी त्रिवेणी है। प्रश्नों हमेशां मन पैदा करता है। प्रश्नों का उद्‌भवस्थान मन है। और जब तक बुद्धि स्वीकार न करे तब तक हमें समाधान स्वीकार्य नहीं है। समाधान ये बुद्धि का क्षेत्र है। और शरणागति चैतसिक होनी चाहिए, शारीरिक नहीं। ‘मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः।’ हमारी शारीरिक शरणागति बहुत है। मैं मेरे जीवन में अनुभव करता हूं कि कई वक्त मेरी भी ज्यादा सेवा होती है जो मुझे राश नहीं आती। वह शारीरिक भाव होता है कि बापू को हम कैसे मदद करें। लेकिन यह ज्यादा है। मैंने अभी कथा के आयोजकों को पंचशील कहे कि तलगाजरडा की कथा करानी हो तो

तुम्हें ये पंचशील का पालन करना पड़ेगा। उसमें एक शील मैंने कहा कि तुम जिसको मोरारिबापू करके हो; मेहरबानी कर उसको ज्यादा सुविधा न दो। यह एक शील की स्थापना मैंने की। और कलकत्ता के हमारे मामाजी ने मुझे याद दिलाया कि बापू, एक शील ओर बढ़ा दो। तो मैंने ये एक शील बढ़ाकर कहा कि कथा के आयोजकों कर्ज़ करते कथा न करायें। मेहरबानी कर जिसके पैसे लिये हो उसको वापस दे देना। क्योंकि मुझे ऐसे अनुभव भी हुए हैं कि कर्ज़ करके कथा करायें और फिर लोग उगाही करने मेरे पास आये! यह जो मैं कहता हूं, धर्मक्षेत्र। और ‘धर्मक्षेत्रे कृतं पापं।’ फिर तो कुछ हो ही न सके! वज्रलेप हो! तो ऐसा भी होता है।

शरणागति चैतसिक होनी चाहिए। प्रश्नों मन पैदा करे। समाधान बुद्धि के स्तर पर आये। शरणागति चैतसिक हो। अंतःकरण का एक चौथाई भाग मैं इसमें नहीं लेता क्योंकि यह त्रिवेणी है। और वह चौथे भाग को तो दूर रखना ही अच्छा। इसलिए कैलास बहुत दूर है। शंकर समष्टि का अहंकार है। वह दूर रहे तो अच्छा। अहंकार शरणागत नहीं हो सकता। वरना अहंकार का अस्तित्व ही नहीं होता। तो ‘गीता’ यह त्रिवेणी है। मन प्रश्नों पैदा करता है। बुद्धि समाधान देती है और चित्त की शरणागति होती है। यह त्रिवेणी है। ‘गीता’ मैं तो ऐसी कितनी बहुत अच्छी त्रिवेणी है। ‘यज्ञ दान तप श्रद्धा त्रयो विभाग।’ योग मार्ग की कितनी त्रिवेणी! यह तीन प्रकार का तप, तीन प्रकार की श्रद्धा, तीन प्रकार का ये, ये; ऐसे त्रिवेणी ही त्रिवेणी है।

हमारे यहां तीन जगद्‌गुरु। वैसे तो हमारे सनातन धर्म में; जो हमारा है; हमारा मतलब केवल हमारा अकेले का नहीं, पूरी दुनिया का, अगर स्वीकार करे तो। न स्वीकार करे तो कौन जिद्द करे? यह सनातन धर्म में जगद्‌गुरु भी आये। जगद्‌गुरु रामानुजाचार्य पधारे। निम्बार्क भगवान पधारे। जगद्‌गुरु माधवाचार्य पधारे। और हमारे जगद्‌गुरु वल्लभाधीश पधारे। महाराष्ट्र तो तुकाराम को भी जगद्‌गुरु कहे; जगद्‌गुरु तुकाराम। लेकिन शाश्वत जगद्‌गुरु कितने? शाश्वत जगद्‌गुरु तीन। एक राम, एक कृष्ण और तीसरा शिव। यह कृष्ण कालग्रस्त नहीं है; जिनको काल पकड़ सके ऐसा जगद्‌गुरु नहीं है, कालातीत है। यह शाश्वत जगद्‌गुरु है। शिशुपाल इतनी गालियां दे तो भी कृष्ण शाश्वत जगद्‌गुरु है। वे लोग न स्वीकार करे तो उनके बाप का भी यह जगद्‌गुरु है! क्योंकि यह शाश्वत जगद्‌गुरु है।

ये मेरा फ़र्ज़ था कि मैं उसके हाथ धूलवाउं,
इन्हीं हाथों ने मुझ पर किचड़ उछाला था।

कोई लाख अस्वीकार करे तो भी शाश्वत जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण है। उनके बारे में बहुत ऐसे-वैसे बोला जाता है। व्यासपीठों को अब जागृत रहना पड़ेगा। खैर! भगवान राम शाश्वत जगद्‌गुरु है। रजोगुणी लोग उनको शाश्वत जगद्‌गुरु कहे तो तुरंत स्वीकार करना मुश्किल हो; सत्त्वगुणी कहे तो भी स्वीकार करना मुश्किल हो; तमोगुणी कहे तो स्वीकार ही न हो। क्योंकि यह गुणआश्रित निवेदन है। लेकिन राम भी जगद्‌गुरु है, शाश्वत जगद्‌गुरु है, ऐसा अत्रि बोले हैं। और अत्रि गुणातीत है। डोंगरेबापा की व्याख्या है कि अत्रि तीनों गुणों से पर है।

जगद्‌गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं।।

और आदि-अनादि काल के भी काल ऐसे शाश्वत जगद्‌गुरु भगवान सदाशिव। यह भी एक त्रिवेणी है। और वे तीनों के मुख से तीन प्रवाह निकले।

तुलसीदासजी के चरणों में प्रणाम कर उनके आशीर्वाद लेकर मैं कहूं तो कह सकते हैं कि यह तीनों प्रवाह नखनिर्गता नहीं, मुखनिर्गता है। और ऐसे धर्मक्षेत्र में युद्ध का आरंभ हुआ; मध्य में रथ की स्थापना हुई और अर्जुन के विषादयोग से आरंभ हुआ। ऐसी एक तीसरी मुखनिर्गता गंगा त्रिलोक को पावन करने निकली वह लंका के रणमैदान में निकली, जहां युद्ध की तैयारी है। यह गीताएं युद्ध के मैदान में ही निकलती होगी! क्या हुआ है यह? लेकिन युद्ध के मैदान में जो निकले उनको ही ‘गीता’ कही जाय न साहब! ए. सी. कमरे में तो उनका भाष्य हो! ‘गीता’ प्रगट न हो। टेबल पर बियर का आधा प्याला पड़ा हो, कहीं आधी केवेन्डर सिगरेट फूंकी हो और फिर पाश्चात्य विद्वानों ‘भगवद्गीता’ पर भाष्य करे वह स्वीकार्य नहीं होता। वह तो अग्निहोत्रि ब्राह्मण कर सके। जिसके हाथ में कमंडल हो; जिन्हों ने अखंड अग्नि के व्रत धारण किये हो साहब! जिनके मुख में वेद के सिवा दूसरा शब्द न निकला हो। मैं मेरा पक्का करने बापजी के साथ बात करता था कि यह ‘गीता विद्यालय’ के वृक्षों के थड़ भगवे रंग से रंगे हैं, फिर उसी पर सफेद पट्टा है तो ये थड़ सुंदर लगे। बाकी मूल को तो रंग ही नहीं सकते। ऐसे मूल ग्रंथों का भाष्य क्या? वह तो जैसे प्रगट हुए वैसे गुरुकृपा से यहां प्रगट हो उसी दिन समझ में आये। बाकी भाष्यों भी हमारी बुद्धि को भ्रमित नहीं कर देते?

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।

'महाभारत' में मेरा मामा, मेरा मौसा, मेरा चाचा, मेरा फूआ और फलां, ये देखकर अर्जुन विषाद में पटका। और यहां 'रावनु रथी', रावण के पास रथ और मेरे प्रभु के पास रथ नहीं; ये दो वस्तु देखकर विभीषण को विषादयोग शुरू हुआ है। और ये विषादयोग में 'मुख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावन सुरसरी।' भगवान के मुख से एक 'गीता' निकली उसका नाम 'भगवद्गीता' नहीं, 'भगवद्भक्तगीता' था। जो परम वैष्णव विभीषण को कही गई। जिस के आंगन में तुलसी का गमला था; हरिनाम अंकित घर था; जहां भोगभवन और भजनभवन थोड़ा भिन्न था। तो यह तीनों जो शाश्वत जगद्गुरु है उनके मुख से यह प्रवाह निकला है। यह भी एक त्रिवेणी है।

मुझे मेरे जीवन को ज्यादा ठीक करने हेतु कुछ कहना हो तो मैं 'भगवद्गीता' को सत्य, प्रेम और करुणा की त्रिवेणी कहूं। 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म।' प्रथम छः अध्याय ले लो। सत्य के सिवा किसका प्रतिपादन है? यह त्रिवेणी छः छः छः की त्रिवेणी। और फिर सात से बारह तक जायें तो 'भक्तियोग' में जहां पूरा होता है वह प्रेम का प्रवाह है। यद्यपि 'भगवद्गीता' में वैसे 'प्रेम' शब्द का ज्यादा प्रयोग नहीं है। वहां 'प्रिय' शब्द है। खैर! और उसके बाद जो छः अध्याय है, वह जो तीसरा भाग है ये किसीने की हुई करुणा है। वह कर्म का भाग कहा जाय। जो त्रिवेणी है ज्ञान, भक्ति और कर्म की। लेकिन किसीने हम पर करुणा की है। इसलिए सत्य, प्रेम और करुणा।

युवान भाई-बहन, सलाह नहीं बल्कि तुम्हारे साथ संवाद करूं। सत्य के साथ सदा चलना। आज लोग तटस्थ बनते हैं और ज्यादातर मध्यस्थ बने हैं। लेकिन कोई सत्यस्थ बनने को तैयार नहीं। सत्यस्थ कितने? देश को, राष्ट्र को, विश्व को सत्यस्थ की आवश्यकता है। इसलिए हम सत्य का पालन न कर सके तो कोई चिंता नहीं। हमारी औकात भी नहीं। सत्य के साथ चलना। और प्रेम के पीछे चलना। जहां प्रेम हो, 'जे कोई प्रेम अंश अवतरे।' उसका अनुगमन करना। उसके पीछे-पीछे चलना। और करुणा को पीछे रखना; हमें आगे चलना। क्योंकि हमें आनंद रहे कि मेरे पीछे किसी की करुणा काम कर रही है। मेरी पीठ पर किसी की करुणा हाथ पसार रही है। तो मेरे लिए तो यह भी त्रिवेणी है। तो 'भगवद्गीता' स्वयं त्रिवेणी है, ये हकीकत है।

मैंने शुरूआत में कभी हमारे त्रिवेणी संमेलन में कहा है कि यहां की त्रिवेणी में विशेषता ये है कि प्रयाग की त्रिवेणी में गंगा और जमुना का दर्शन होता है, सरस्वती दिखाई नहीं देती लेकिन जोडियाधाम की त्रिवेणी में सरस्वती भी प्रगट हुई। कितने वक्ता बोल रहे हैं! कितना सुंदर बोल रहे हैं! कितनी तैयारी कर वोल रहे हैं! यहां सरस्वती प्रगट होती है। तो 'भगवद्गीता' स्वयं त्रिवेणी है; शाश्वत त्रिवेणी है। वह सिकुड़नेवाली नहीं है।

मैं गत कथा में कहता था कि जिनमें पात्रता देखे वहां शास्त्रों उदार होकर अर्थ प्रगट करने लगे और जहां अपात्रता हो वहां शास्त्रों लोभी बन जाते हैं। जैसे कि-

कुपात्रनी आगळ पानबाई वस्तु न वावीए ने
समजीने रहीए चूप रे;
मरने आवीने धननो ढगलो करे ने
भले होय मोटो भूप रे...

पूरी दीनता के साथ मैं 'रामायण' पास जाउं तो चौपाईयां उदार बनकर मुझे अर्थ दे। और जरा भी अभिमान के साथ जायें तो वही चौपाईयां कृपण बन जाती है। वेंदों के अर्थ प्रगट होने लगे साहब! उनके उदर में वेदों के अर्थ प्रगट हो क्योंकि श्लोक उदार होने लगते हैं कि यह योग्य है। शास्त्रों अधिकारी के पास उदार बनते हैं और अनधिकारी के पास कृपण बनते हैं।

'रामायण' में एक व्रत है। वह व्रत का हम पालन करें तो भगवान बहुत प्रसन्न हो। भगवान इतने प्रसन्न हो कि भगवान को डकार आने लगे। अगर वह व्रत का पालन करें तो ठाकोरजी बहुत प्रसन्न हो। 'हरितोषन व्रत।' भगवान को संतोष देनेवाला व्रत। उसमें भगवान प्रसन्न हो।

हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई।

ब्राह्मण की सेवा करनी ये हरितोषन व्रत है। उनसे हरि बहुत प्रसन्न होते हैं। लेकिन यहां 'द्विज' शब्द है। द्विज यानी ब्राह्मणता। लेकिन संस्कृत वाङ्मय में और हमारी लोकबोली में भी द्विज के अनेक अर्थ हुए कि जिनका दूसरी बार जन्म हो वह द्विज। कूख से जन्मे वह कुछ दूसरा होता है और बुद्धपुरुष के मुख से जन्मे वह कुछ ओर। कई कोठे से पकते हैं और कई बुद्धपुरुष के होठों से पकते हैं।

आजकल देश में दो-तीन ऐसी घटनाएं हुई। बहुत समय से ऐसी घटना होती रहती है। हमें दया आये ऐसे प्रसंग हुए। हैदराबाद में हुआ। दो दिन पहले उनाव में हुआ। हैदराबाद में हुआ उनको तो बिना कोर्ट कर्मफल मिल गया! ऐसी बिनशोभास्पद घटनाएं होती है तब हम समब को विशेष जागृत होना पड़ेगा। भगवान कृष्ण तो युगेयुगे जन्मे लेकिन कलमों ने भी समय-समय पर जन्म लेना पड़ेगा। यह कलम कैसे अवतार लेती बंद हो गई? लेखिनी ने अब अवतार लेना होगा। किसने? कलमकार ने। किसने? कथाकार ने। किसने? रचनाकार ने।

'भगवद्गीता' सर्जक भी है, रक्षक भी है, पालक भी है और सेवक भी है। ये नये जीवन का सर्जन करती है। हमारे विष्णुदेवानंदगिरि महाराज ने कैलास के महामंडलेश्वर पद पर बिराजकर तलगाजरडा हमारे लिए पोस्टकार्ड लिखा था। वह आधा लिखा पोस्टकार्ड था। आधा पोस्टकार्ड लिखा नहीं जाता। आधा कागज़ आये तब गांव में लोग बिना पढ़े रोने लगे कि किसी का अवसान हुआ! उसी में 'अशुभ' भी न लिखना पड़े। वरना पिछले भाग में 'अशुभ' ऐसा लिखे। लेकिन ये न लिखो तो भी आधा लिखा कागज़ आये तो लोग रोने लगे। और ये आधा कागज़ आया था वह हमें ऐसा कहने के लिए कि बावाओ! जीते ही मर जाना! मरकर तो सब मरे लेकिन तुम जीते ही मर जाना। फिर आपको कोई नहीं मार सकेगा। ऐसा एक आधा लिखा पोस्टकार्ड मैंने संभाल रखा है। उसमें हमारे दादा ने ऐसा लिखा था कि 'रामायण' तो हमारे कुल मैं है ही; ये हमारे मार्गी साधुओं के कुल में है। मार्गी; मार्गी यानी मार्गी यानी मार्गी। हम मार्गी है, कुमार्गी नहीं। तो उसमें लिखा था कि 'रामायण' तो हमारे कुल में है। लेकिन लड़कों को कहना, 'भगवद्गीता' कभी न छोड़े।

'भगवद्गीता' सर्जक है। हमें बदल डाले। हमें निर्वाण देकर नवनिर्माण करे। जीते ही निर्वाण प्रदान करे 'भगवद्गीता' और अपने अंदर नवनिर्माण करे। 'भगवद्गीता' हमारी रक्षक है। यह 'गीता विद्यालय' की रक्षा कौन करे? यहां कोई चौकीदार रखा होगा कि नहीं, मुझे पता नहीं। यह दोनों विनु रक्षा करे? उदयभाई करे? कौन करे? 'भगवद्गीता' इस का कवच है; इसकी रक्षक है। 'भगवद्गीता' हमारा पोषक तत्त्व है। उसने वचन दिया है कि तुम्हारे योगक्षेम का वहन मैं करूंगा। यह पोषक है। और 'भगवद्गीता' सेवक भी है।

दूसरी त्रिवेणी कहूं तो भगवान कृष्ण सर्जक है। भगवान कृष्ण रक्षक भी है। 'परित्राणाय साधुनाम्।' भगवान कृष्ण पालक भी है और भगवान कृष्ण सेवक भी है। वह पत्तर उठाये; सारथ्य का स्वीकार करे। तो सेवक भी है। व्यास सर्जक है। व्यास हमारा रक्षक है। हमारा रक्षण कौन करता है? व्यास करता है? हमारा पोषक तत्त्व कौन है? व्यासपीठ है। हां, मैं ऐसे मेरे व्यासपीठ के वक्ताओं को उकसाता नहीं लेकिन मुझे कहने की इच्छा होती है कि अच्छी दक्षिणा लेना। हां, मर जाने के लिए हम नहीं जन्मे! उनको गाने के लिए जन्मे हैं। हां, लेनी अच्छी दक्षिणा। कई लोग आधा घंटा बोले और पंद्रह-पंद्रह लाख रूपये लेते हैं! मेरा कथाकार टूट जाता है! सात-सात दिन, नौ-नौ दिन साधना करता है। हां, जो कथा कराये उनको कथाकार को अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए। हमारी वृत्ति नहीं होनी चाहिए। हमारी वृत्ति तो त्याग की हो। मैं यूं नाम दूं तो उनको पसंद न आये। हमारी व्यासपीठ ऐसा करती है कि व्यासपीठ पर आया हुआ बहुत कुछ गौशाला में दे देती है; कोई स्थानों में दे देती है; कुछ आश्रमों में दे देती है। व्यासपीठ ने लेने का काम किया ही नहीं। लेना ही चाहिए। अच्छे से अच्छी दक्षिणा लेना। और कोई ऐसा यजमान हो जो ठीक तरह से दक्षिणा न दे तो मुझे कहना। मैं उनको कहूंगा कि तुझे कम पड़ता हो तो तलगाजरडा से ले जाना लेकिन मेरे कथाकार का सन्मान ठीक तरह से करना। तुने किसने कहा था कि कथा का आयोजन कर! हां, हमारा ये धंधा नहीं; हमारी ये आजीविका नहीं; हमारा ये भजन है। लेकिन समाज का भी कर्तव्य है। हमें पोठिया बना दे और कथा के आयोजक बंगलें बना ले ये अब नहीं चलेगा! आपको ऐसा नहीं लगता कि पचहत्तर सालों में मुझे कितने अनुभव हुए होंगे!

घाट घाटनां पाणी पीधां,
सब तीरथ कराई तुंबडिया।

बापू तो कुछ लेते ही नहीं! वृत्ति नहीं होनी चाहिए। हम कोई भिखमंगे थोड़े हैं? व्यास हमारा सर्जक है। व्यास हमारा रक्षक है। व्यास हमारा पालक है। व्यास जैसी सेवकाई किसने की? जिसने उनकी पीठ हमें दे दी कि मैं

दादा हूं। मेरी पठ पर बैठ जाओ! साहब फज़त-फालके में और वो चक्करडी में बैठे तो उसमें चक्कर आये। दादा की पीठ पर बैठे हो उसमें जो मौज आये ऐसी मौज कहीं नहीं आती। यह पीठ है। यह 'पीठ' शब्द ही ऐसा है कि जिस पर बैठने की इच्छा ईश्वर को भी हो। जहां हमें जगह मिलती है। मेरे हनुमानजी की पीठ पर ठाकोरजी बिराजमान होते हैं यह पीठ ही है।

त्रिवेणी का तीसरा प्रवाह मैं मानता हूं हनुमानजी। एक तो 'गीता' में कृष्ण; दूसरा व्यास और तीसरा हनुमान। हमारे यहां कोई भी कर्मकांड, लग्नविधि, विवाह आदि अग्नि की साक्षी में होते हैं। 'भगवद्गीता' अग्नि की साक्षी में नहीं आई; पवनपुत्र की साक्षी में आई है। यहां साहब! सबसे बड़ा साक्ष्य लेकर बैठे हैं श्री हनुमान, वायुपुत्र। और हनुमान भी सर्जक है। हनुमान रक्षक है। 'साधु संत के तुम रखवारे।' हनुमान सर्जक है। लंका का नवल इतिहास रचा इस आदमी ने! हनुमानजी रक्षक है। हनुमानजी पालक है। और हनुमानजी सेवक है।

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

यह भी एक त्रिवेणी है। लेकिन यह ऐसी त्रिवेणी है जो कभी सिकुड़ाती नहीं।

तो यह तीनों सर्जक भी है। यह त्रिवेणी और अपनी त्रिवेणी भी। मैं अपनी सराहना नहीं करता। और कर भी लूं। विनोबाजी ने कहा कि आदमी में अगर अच्छे सद्गुण हो तो उनको 'गुणकीर्तनम्' कहना चाहिए। कोई चिंता नहीं। दुनिया की ऐसी-तैसी! उसमें क्या बिगड़ गया? हम कहते हैं, मैं ऐसा हूं, मैं पापी हूं! अब थोड़ी भाषा बदलो। सब को पता है कि तू क्या है? लेकिन ऐसा न कहा जाय कि 'आजु धन्य मैं धन्य अति।' क्या ऐसे धिक् ही अपने आप को कहना? अब थोड़ी सोच बदलो। अपनी जात को धन्य कर बोलिए कि हम धन्य है। हम कल सुधरेंगे। आज नहीं तो कल। इतनी सारी व्यासपीठें हमें बाहों में लेकर बैठी है। त्रिवेणी सर्जक है। त्रिवेणी संस्कारों की रक्षक है। त्रिवेणी पोषक है। और त्रिवेणी सेवक है। 'भगवद्गीता' स्वयं त्रिवेणी है। लेकिन-

देस-काल-पूरन सदा बदे बेद पुरान।
सबको प्रभु, सबमें बसै, सबकी गति जान।

'विनयपत्रिका।' कौन शाश्वत जगद्गुरु? यह तीनों शाश्वत। किसीको शाश्वत जगद्गुरु कह सके? मेरे तुलसी 'विनयपत्रिका' में लिखते हैं-

देस-काल-पूरन सदा बदे बेद पुरान।

देश और काल में पूर्ण कौन हो सिवा परमात्मा? सिवा परमात्मा के मुख से निकली 'मुखनिर्गता।' देश-काल में पूर्ण ओर कौन हो? सर्दी का मौसम आये तो गर्मी नहीं रहती। गर्मी का मौसम आये तो सर्दी नहीं रहती। सभी मौसम पूर्ण नहीं। उसमें चढ़ाव-उतार आया करे। सभी देश पूर्ण नहीं। सरहदें बदलती रहे। भूगोल बदलती रहे। देश-काल में अगर कोई पूर्ण है तो वह परमतत्त्व है। तुलसी कहते हैं; मैं नहीं कहता।

देस-काल-पूरन सदा बदे बेद पुरान।
सबको प्रभु, सबमें बसै, सबकी गति जान।

परमतत्त्व सबके पति है; सब में बसते हैं और सबकी गति जानते हैं।

तुलसिदास तेहि सेइये, संकर जेहि सेव।

देश-काल पूर्ण यह ग्रंथ है। ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद, तीनों का निचोड़ यह ग्रंथ है। हमारे यहां त्रिवेद की चर्चा है मूल में। यह तीनों वेदों को निचोड़कर जो हमारे पास आता है यह भी एक त्रिवेणी है। वेद वदते हैं, ऐसी 'श्रीमद्भगवद्गीता' साक्षात् त्रिवेणी है। मैंने आधा घंटा ज्यादा लिया हैं! मैं क्षमा चाहता हूं। बोलने की तो बहुत इच्छा हो। आप मुझे समझना, हां। और न समझे तो भी कोई चिंता नहीं। कौन किसको समझ सका है? ऐसी अपेक्षा क्यों रखें? मुझे कई लोग पूछते हैं, बापू, आप थकते नहीं?

मैं कैसे कहूं कि थक गया हूं।
न जाने किस किसका हौसला हूं।

कृष्ण कैसे कहे कि मैं थक गया! वह भले ही सीनियर सिटिज़न की तरह प्राची के पीपल नीचे बैठे। थकान दिखती ये तो उनकी लीला थी। लेकिन कितने-कितने का हौसला है कृष्ण! 'भगवद्गीता' कितने-कितने का हौसला है! हमारा कैलासपति महादेव कितने-कितने का हौसला है! हमारी जगदम्बा दुर्गा कितने-कितने का हौसला है! राम, कृष्ण और हनुमान ये सब हमारे हौसले हैं।

मैं कैसे कहूं कि थक गया हूं।
न जाने किस किसका हौसला हूं।

(श्री गीता विद्यालय, जोडियाधाम (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्यः दिनांक ८-१२-२०१९)

॥ जय सीयाराम ॥